भारतीय आधुनिक शिक्षा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शैक्षिक प्रशासकों तथा शोधकर्ताओं को एक मंच प्रदान करना, शिक्षा के विभिन्न आयामों जैसे शिक्षादर्शन, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा की समकालीन समस्याएं, पाठ्यक्रम एवं प्रविधि संबंधी नवीन विकास, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यों में शिक्षा की स्थिति आदि पर मौलिक तथा आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करना और शिक्षा के सुधार और विकास को बढ़ावा देना। लेखकों द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने हैं। अतः ये किसी भी प्रकार परिषद् की नीतियों को प्रस्तुत नहीं करते इसलिए इस संबंध में परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

मूल्य एक प्रति : 8.50 रुपए   वार्षिक : 34.00 रुपए

भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष : 23 | अंक : 2 | अक्तूबर 2004

इस अंक में

परम्परा से हटकर–वेब-आधारित शिक्षा

❑ नौशाद हुसैन

वेब-आधारित शिक्षा, ऑन-लाइन शिक्षा तथा दूरस्थ शिक्षा से भिन्न है। वेब-आधारित शिक्षा प्रदान करने के लिए किसी भी शैक्षिक संस्थान को अपनी 'वेब साइट' का निर्माण करना पड़ता है। इस वेब साइट के माध्यम से वास्तविक समय में आभासी कक्षा का वातावरण तैयार किया जाता है। इस आभासी कक्षा में अध्यापक, पाठ्यक्रम तथा अधिगमकर्ता तीनों की उपस्थिति होती है तथा छात्र व शिक्षक परस्पर अन्तःप्रक्रिया कर विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। वेब-आधारित शिक्षा के माध्यम से किसी भी देश के, कोई भी भाषा बोलने वाले, गरीब या धनवान छात्र शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

प्रो. डी. एस. कोठारी ने शिक्षा आयोग (1964-66) की रिपोर्ट के माध्यम से कहा था– "विज्ञान पर आधरित इस विश्व में राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा व शोध, निर्णायक भूमिका रखते हैं"। वर्तमान समय में हमारे देश में उच्च शिक्षा गंभीर परीक्षण के दौर से गुजर रही है। उच्च शिक्षा की पद्धति विभिन्न चुनौतियों का सामना कर रही है, जिनमें प्रमुख चुनौतियां निम्न प्रकार हैं–

- अपर्याप्त संसाधन व उनकी पूर्ति की आवश्यकता।
- उच्च स्तर के शोध व विकास के समर्थन में निपुण शिक्षकों की मांग प्रतिपूर्ति।
- स्नातक व परास्नातक पाठ्यक्रमों में पंजीकृत होने वाले छात्रों को नियंत्रित करने की आवश्यकता।
- वैश्वीकरण के इस युग में छात्रों को 'अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान के बाजार' को ध्यान में रखते हुए अपने अनुकूल ज्ञान प्राप्ति की छूट।

हमारे देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उच्च शिक्षा के परिदृश्य को विकसित करने के लिए काफी प्रयास किए गए हैं। परन्तु आज भी 18 से 23 आयु-वर्ग के महाविद्यालयों में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों की संख्या इस आयु-वर्ग की कुल संख्या का मात्र 8 प्रतिशत् है जो विश्व के विकसित तथा विकासशील अन्य राष्ट्रों की तुलना में बहुत कम है। यहां पर यह बात ध्यान रखने योग्य है कि विकसित देशों जैसे कनाडा, यू.एस.ए., फ्रांस तथा यू.के. में उच्च शिक्षा में छात्रों का पंजीकरण क्रमशः 100, 80, 50 तथा 30 प्रतिशत् है। अगर हम कम विकसित देशों जैसे– थाईलैण्ड, इन्डोनेशिया, मैक्सिको तथा ब्राजील के छात्र पंजीकरण की तुलना भारत से करें तो भी उच्च शिक्षा में छात्रों का पंजीकरण, 8 प्रतिशत्, बहुत कम है। सन् 1955 में यूनेस्को द्वारा तैयार की गई उच्च शिक्षा के विकास व परिवर्तन संबंधी नीति में इस बात पर बल दिया गया है कि उच्च शिक्षा के फलस्वरूप ही किसी राष्ट्र को सांस्कृतिक विकास व आर्थिक प्रतिस्पर्धा की शक्ति प्राप्त होती है। हम सभी इस तथ्य से संहमत होंगे कि जिन देशों में उच्च शिक्षा को महत्व प्रदान किया गया, वे राष्ट्र आर्थिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध तथा विकसित हैं। भारत इन विकसित

राष्ट्रों से तभी प्रतिस्पर्धा कर सकता है जब हमारे देश में भी उच्च शिक्षा के क्षेत्र को गुणात्मक तथा संख्यात्मक दृष्टि से व्यापक स्तर पर विकसित करने के प्रयास तीव्रता से संपादित किए जाएं।

यूनेस्को द्वारा गठित अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग "लर्निंगः दि ट्रेजर विदइन" ने 21वीं शताब्दी में शिक्षा के प्रारूप पर प्रकाश डालते हुए कहा है— "भविष्य के लिए शिक्षा के वर्ममान स्वरूप में आवश्यक संशोधन की आवश्यकता है तथा इस कार्य के लिए शिक्षा की वर्तमान नीतियों तथा विधियों में परिवर्तन आवश्यक है। विज्ञान तथा तकनीकी इस कार्य में हमारी मदद कर सकते हैं तथा इनके माध्यम से हम अपनी शिक्षा प्रणाली को 21वीं शताब्दी के लिए तैयार कर सकते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा की पहुंच विश्व के प्रत्येक नागरिक तक हो तथा इस कार्य में सरलता और सुगमता हो। सूचना तथा सम्प्रेषण तकनीक में आए ताजा बदलाव दुनिया के कौने-कौने तक शिक्षा की अलख जगा सकते हैं।"

सूचना तथा सम्प्रेषण तकनीक— एक नई क्रान्ति

सूचना तथा संप्रेषण तकनीक के क्षेत्र में पिछले एक दशक में आई क्रान्ति ने अब अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया है। आज एक छोटे से कम्प्यूटर का पुश बटन दबाकर विश्व के किसी भी कौने में बैठे व्यक्ति से संपर्क स्थापित किया जा सकता है। सूचना के क्षेत्र में इस नई क्रान्ति का सूत्रपात 19वीं शताब्दी में टेलीग्राफ के आविष्कार के साथ हो गया था। बाद में रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेलीफोन, टेलीविजन, सेल्युलर फोन, दूरसंचार उपग्रह, कम्प्यूटर, इंटरनेट, प्रिन्टर, मल्टीमीडिया, (बहुमाध्यम) इत्यादि ने इस प्रौद्योगिकी को वर्तमान क्रान्तिकारी स्वरूप प्रदान किया। आज पूरे विश्व में औद्योगिक रूप से विकसित समाज एक ऐसे सूचना समाज में परिवर्तित होता जा रहा है जो कम्प्यूटर के बिना एक सैकेण्ड भी जीवित नहीं रह सकता। सूचना तथा संप्रेषण क्रान्ति ने उपभोक्ता सुविधाएं जुटाने के साथ-साथ अब शिक्षा और प्रशिक्षण के क्षेत्र में भी कदम रख लिया है। सम्प्रेषण तकनीक में आ रहे ताजा बदलावों ने पढ़ने और सीखने के पारम्परिक तौर-तरीकों को बदल दिया है। इस सबका श्रेय जाता है— 'इन्टरनेट' को।

वर्तमान समय में भारत जैसे देश में जो सुविधाएं उपलब्ध हैं उनके आधार पर शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा करना कठिन प्रतीत होता है। इस कार्य में सूचना प्रौद्योगिकी हमारी मदद कर सकती है। यूनेस्को ने सूचना प्रौद्योगिकी को इस प्रकार परिभाषित किया है— "वैज्ञानिक, तकनीकी तथा इंजीनियरी जैसी विधाएं तथा व्यवस्थापन तकनीक का प्रयोग सूचना को निष्पादित, संसाधित तथा प्रयोग करने के लिए कम्प्यूटर (संगणक) इत्यादि का प्रयोग करते हुए, मानव तथा मशीन के बीच होने वाली क्रिया को, जो कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पहलुओं से जुड़ी हो, जब इलेक्ट्रॉनिक आयाम प्रदान किया जाता है तब इस एकजुटता को ही सूचना प्रौद्योगिकी का नाम दिया जाता है। हाल ही में हुए आविष्कारों जैसे— कम्प्यूटर, कॉम्पैक्ट डिस्क (सी.डी.), उपग्रह, लेजर तथा इन्टरनेट आदि ने सूचनाओं के आदान-प्रदान को अत्यधिक गति दी है।

इन्टरनेट— भूमण्डलीय जानकारियों का झरोखा

इंटरनेट के जन्मदाता डा. विन्टन जी. सर्फ हैं। इंटरनेट 'इन्टरनेशनल नेटवर्क' का संक्षिप्त रूप है। इन्टरनेट विश्व भर में फैले हुए असंख्य कम्प्यूटरों के नेटवर्क का नेटवर्क है। जब दो या दो से अधिक कम्प्यूटर इस प्रकार जोड़ दिए जाते हैं कि वे एक-दूसरे के साथ परस्पर सम्प्रेषण स्थापित कर सकें, तब इस प्रकार बनी संरचना को 'नेटवर्क' कहते हैं। इन्टरनेट विश्व भर में फैली हुई लाखों कम्प्यूटर प्रणालियों से निर्मित एक संयुक्त सृष्टि है। आज इन्टरनेट विश्व भर में करोड़ों उपयोगकर्ताओं को एक-दूसरे से जोड़ता है। चुटकियों में वांछित सूचनाओं तक पहुंच की इस 'ऑन-लाईन' सुविधा ने शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के नए परिदृश्य खोल दिए हैं। इन्टरनेट को संक्षेप में 'नेट' अथवा 'वेब' भी कहा जाता है।

वर्ल्ड वाइड वेब– बहुआयामी प्रकृति

इन्टरनेट के क्षेत्र में 1990 में 'वर्ल्ड वाइड वेब' का आविष्कार एक नई उपलब्धि था; जिससे शिक्षा के क्षेत्र में एक नई क्रान्ति का शुभारंभ हुआ। यूरोपियन हाई एनर्जी फिजिक्स लैब के भौतिक वैज्ञानिकों द्वारा विकसित किए गए इस नए सॉफ्टवेयर से अब इन्टरनेट पर कहीं से भी कोई पठन सामग्री, श्रव्य और दृश्य (स्थिर और गतिशील), इत्यादि को खोजकर उसे संग्रहित किया जा सकता है। मार्क एंड्रीसन नामक एक युवा विद्यार्थी ने 'ग्राफिक ब्राउजर' का आविष्कार किया था। आज 'मोजाइक' नेटस्केप तथा विनवेब इत्यादि ब्राउजर्स के माध्यम से विश्वव्यापी संजाल से कहीं से भी किसी भी प्रकृति की सूचना प्राप्त की जा सकती है।

आधुनिक युग में 21वीं शताब्दी की चुनौतियों का सामना करने के उद्देश्य से नित्य नई-नई प्रौद्योगिकियां विकसित होने से प्राचीन शिक्षा पद्धतियों को तीव्रता से परिवर्तित किया जाना आज की आवश्यकता हो गई है। पारम्परिक शिक्षण पद्धतियों के स्थान पर सूचना प्रौद्योगिकी ने सूचनाओं के आदान-प्रदान की विधियों में अप्रत्याशित परिवर्तन स्थापित कर दिए हैं। सूचना तथा संप्रेषण प्रौद्योगिकी के माध्यम से जो क्रान्ति उत्पन्न हुई है उस क्रान्ति ने दूरस्थ बैठे व्यक्तियों को किसी भी विषय पर विश्व की उच्चतम गुणवत्ता ग्रहण करने के नए आयामों को एक नई दिशा प्रदान की है। उच्च शिक्षा को सार्वजनिक तथा सुलभ बनाने में वर्चुअल (आभासी) विश्वविद्यालयों द्वारा प्रदान की जाने वाली वेब-आधारित शिक्षा मुख्य भूमिका प्रदान कर सकती है।

वेब-आधारित शिक्षा – आज की आवश्यकता

निरन्तर जनसंख्या वृद्धि के कारण परंपरागत विश्वविद्यालय और कॉलेज उन सब लोगों को प्रवेश देने में सक्षम नहीं हैं, जिनके पास न्यूनतम शैक्षिक योग्यता है और जो उच्च शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं। इस समस्या के समाधान हेतु इन्टरनेट पर वर्चुअल (आभासी) विश्वविद्यालयों को स्थापित किया जा रहा है तथा वेब आधारित शिक्षा के माध्यम से 'वर्चुअल विश्वविद्यालयों' ने उच्च शिक्षा प्रदान करने हेतु अपने दरवाजों को खोल दिया है। वर्चुअल विश्वविद्यालयों में किसी वास्तविक विश्वविद्यालय की सभी विशेषताएं तो होती हैं, मगर उसकी कई प्रमुख कमियां, जैसे— छात्रों की सीमित संख्या, सीमित पाठ्यक्रम, विषय चुनने की बाध्यता, पंजीकरण की कठोर शर्तें, कठोर वार्षिक परीक्षा प्रणाली, एक पक्षीय अध्ययन, अनुदेशात्मक सामग्री की गुणवत्ता का निम्न स्तर आदि— नहीं होतीं।

वेब-आधारित शिक्षा, ऑन लाइन शिक्षा तथा दूरस्थ शिक्षा से भिन्न है। वेब आधारित शिक्षा प्रदान करने के लिए किसी भी शैक्षिक संस्थान को अपनी 'वेब साइट' का निर्माण करना पड़ता है। इस वेब साइट के माध्यम से वास्तविक समय में आभासी कक्षा का वातावरण तैयार किया जाता है। इस आभासी कक्षा में अध्यापक, पाठ्यक्रम तथा अधिगमकर्ता तीनों की उपस्थिति होती है तथा छात्र व शिक्षक परस्पर अन्तःप्रक्रिया कर विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। वेब-आधारित शिक्षा के माध्यम से किसी भी देश के, कोई भी भाषा बोलने वाले, गरीब या धनवान छात्र शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। वास्तविक विश्वविद्यालयों की भांति आभासी विश्वविद्यालयों के लिए भी छात्रों को औपचारिकताएं पूरी करनी होती हैं, जैसे— फार्म भरना, प्रवेश परीक्षा देना, पंजीकरण, फीस जमा करना, आदि। परन्तु सभी कार्य छात्रों को घर बैठे इन्टरनेट के माध्यम से 'ऑन लाइन' करना होता है। पंजीकरण के पश्चात् छात्र अपने अनुकूल पाठ्यक्रम का चुनाव कर शिक्षण की किसी भी विधि जैसे— व्याख्यान विधि, विचार-विमर्श विधि, सेमिनार विधि, अन्वेषण विधि, स्वःशिक्षण विधि आदि को चुन सकते हैं। वेब-आधारित शिक्षा में छात्र तथा शिक्षक निम्न क्रियाएं कर सकते हैं—

- छात्र अपने अधिगम स्तर के अनुकूल कहीं से भी किसी भी प्रकार की पाठ्य-सामग्री 'डाउन-लोड' कर सकते हैं तथा घर बैठे स्वःअध्ययन कर सकते हैं।
- किसी विषय के किसी विशिष्ट बिन्दु पर कठिनाई उत्पन्न होने पर छात्र शिक्षकों, विषय विशेषज्ञों तथा दूसरे छात्रों के साथ विचार-विमर्श कर कठिनाई का समाधान कर सकते हैं।
- किसी विशिष्ट विषय के प्रकांड विद्वान से उस

विषय पर उसके विचार जान सकते हैं।

- किसी भी प्रकरण पर विद्वानों की खुली चर्चा करवा सकते हैं।
- समूहों में मिलकर किसी भी समस्या का समाधान कर सकते हैं।
- शिक्षकों के व्याख्यानों तथा दृश्य-श्रव्य (स्थिर तथा गतिशील) को देख तथा सुन सकते हैं।
- छात्र तथा शिक्षक अपने अधिगम कौशलों का विकास कर सकते हैं।
- ई-लाइब्रेरी के माध्यम से शिक्षक तथा छात्र किसी भी 'डिजीटल लाइब्रेरी' के माध्यम से कोई भी पुस्तक पढ़ सकते हैं।
- शिक्षक निरन्तर अपने ज्ञान तथा शिक्षण कौशलों में वृद्धि कर सकते हैं तथा खुद को नवीन शिक्षण पद्धतियों से लैस कर सकते हैं।

"जब चाहो, जहां चाहो तथा जो चाहो' (शिक्षा के सन्दर्भ में) वाक्य को चरितार्थ करती वेब-आधारित शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का प्रतिमान चित्र 1 में प्रदर्शित किया गया है।

वेब-आधारित शिक्षा के इस प्रतिमान के व्यावहारिक प्रयोग के लिए एक व्यूह रचना अर्थात् कुछ चरणों का अनुसरण करना होगा। दूसरे शब्दों में, हमें इसके लिए एक अनुदेशनात्मक प्रक्रिया के चरणों को समझना होगा, जिनको चित्र 2 में प्रदर्शित किया गया है।

वेब आधारित शिक्षण अधिगम को दो भागों में बांटा जा सकता है–

- ☐ वेब-आधारित शिक्षण अधिगम
- ☐ वेब-आधारित व्यक्तिगत अधिगम

वेब-आधारित शिक्षण अधिगम

वेब-आधारित शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के इस भाग के अन्तर्गत शिक्षक द्वारा पढ़ाए जाने वाले विषय से संबंधित नवनीतम तथा छात्रों के लिए उपयोगी जानकारी को एकत्र करने के लिए इससे संबंधित वेब साइटों का भ्रमण कर सकते हैं तथा वेब-आधारित शिक्षण के दौरान इनका प्रयोग कर सकते हैं। इस विधि के अन्तर्गत छात्रों के समक्ष ऐतिहासिक स्थलों, उपयोगी वैज्ञानिक स्थलों तथा चित्रों, प्रयोगों इत्यादि का प्रदर्शन वेब आधारित कक्षा शिक्षण में किया जा सकता है। तीन आयामी चित्रों, एनीमेशन तथा मल्टीमीडिया (बहु माध्यम) के माध्यम से किसी भी अमूर्त संप्रत्यय को छात्रों को आसानी से समझाया जा सकता है। इस विधि के अन्तर्गत शिक्षक छात्रों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर इंटरनेट का प्रयोग करते हुए वर्चुअल विश्वविद्यालय की वेब साइट को शैक्षणिक उपकरण की भांति प्रयोग करते हुए अपने वेब-आधारित शिक्षण को शैक्षणिक उद्देश्यों की स्पष्ट प्राप्ति हेतु सार्थक बना सकता है।

वेब-आधारित कक्षीय शिक्षण प्रदान करने के लिए सर्वप्रथम शिक्षक द्वारा शैक्षणिक उद्देश्यों का निर्धारण तथा इन उद्देश्यों की स्पष्ट प्राप्ति हेतु एक शैक्षणिक योजना बनाना अति आवश्यक है। इस योजना के अन्तर्गत शैक्षणिक विधियां तथा प्रविधियां, शिक्षक, विषय विशेषज्ञ तथा छात्रों के बीच अन्तःप्रक्रिया, निरीक्षण, मूल्यांकन इत्यादि आता है। इस महत्वपूर्ण कार्य के पश्चात् 'वेब साइट' के माध्यम से शिक्षक अपना शिक्षण कार्य करता है। प्रदर्शन, परिचर्चा, प्रश्न, प्रयोग, परियोजनाओं इत्यादि के माध्यम से शिक्षक तथा छात्रों के बीच अन्तःप्रक्रिया होती है तथा दो-तरफा सजीव संवाद स्थापित होता है। शिक्षक तथा छात्र किसी विषय में कठिनाई उत्पन्न होने पर 'वेब साइट' के माध्यम से विषय विशेषज्ञों से उस पर विचार-विमर्श कर उनकी राय जान सकते हैं तथा अपना संदेह दूर कर सकते हैं। इसके पश्चात् शिक्षक द्वारा छात्रों के व्यक्तिगत अधिगम हेतु कुछ शैक्षणिक कार्य प्रदान किया जाता है, जिनका मूल्यांकन कार्य संपादन के दौरान तथा समाप्ति पर किया जाता है। वेब-आधारित कक्षीय शिक्षण के स्वरूप को चित्र 3 की सहायता से भली-भांति समझा जा सकता है।

वेब-आधारित व्यक्तिगत अधिगम

इसके अन्तर्गत अधिगमकर्ता सर्वप्रथम वेब साइट से संबंध स्थापित कर अपने पाठ्यक्रम से संबंधित संपूर्ण जानकारी
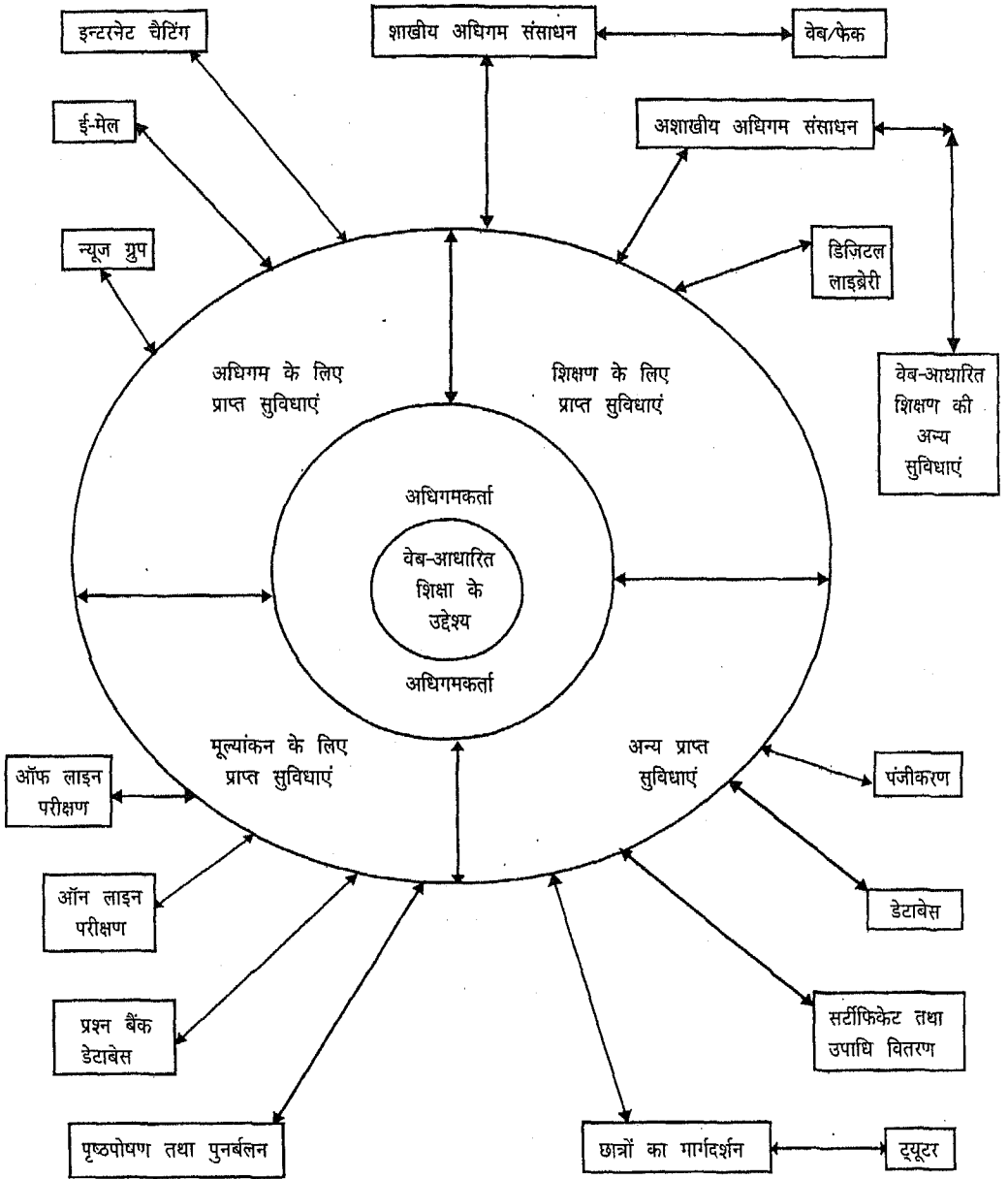
चित्र 1— वेब-आधारित शिक्षण अधिगम का एक पूर्ण प्रतिमान
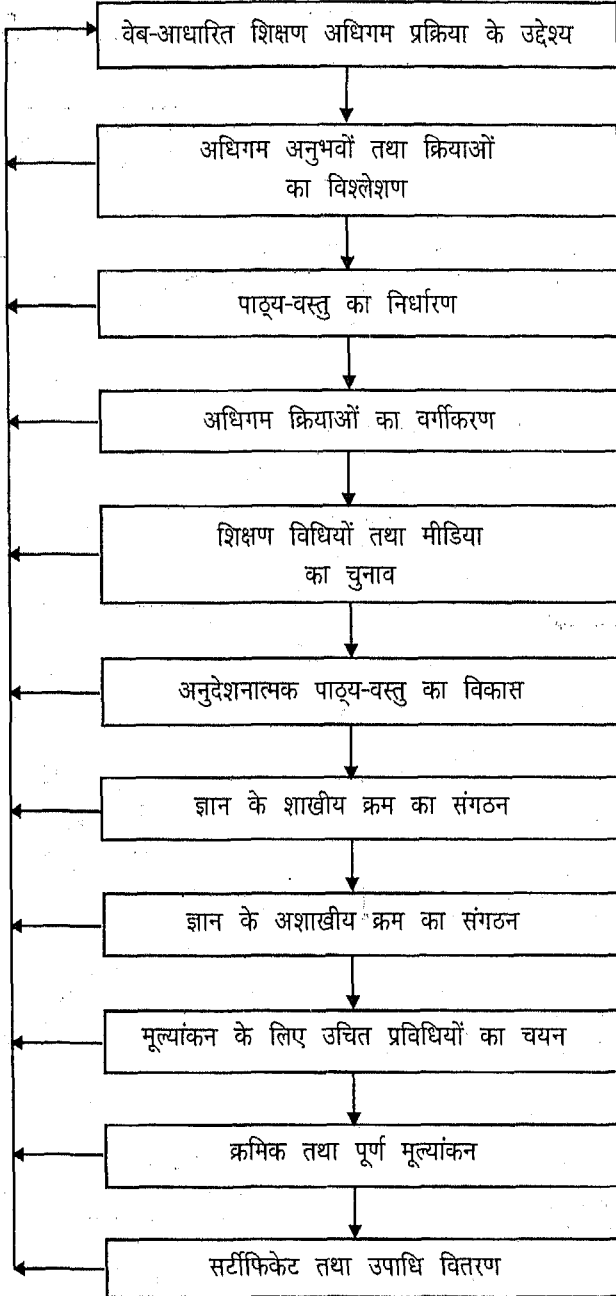
चित्र 2– अनुदेशनात्मक मॉड्यूल निर्माण प्रक्रिया के चरण
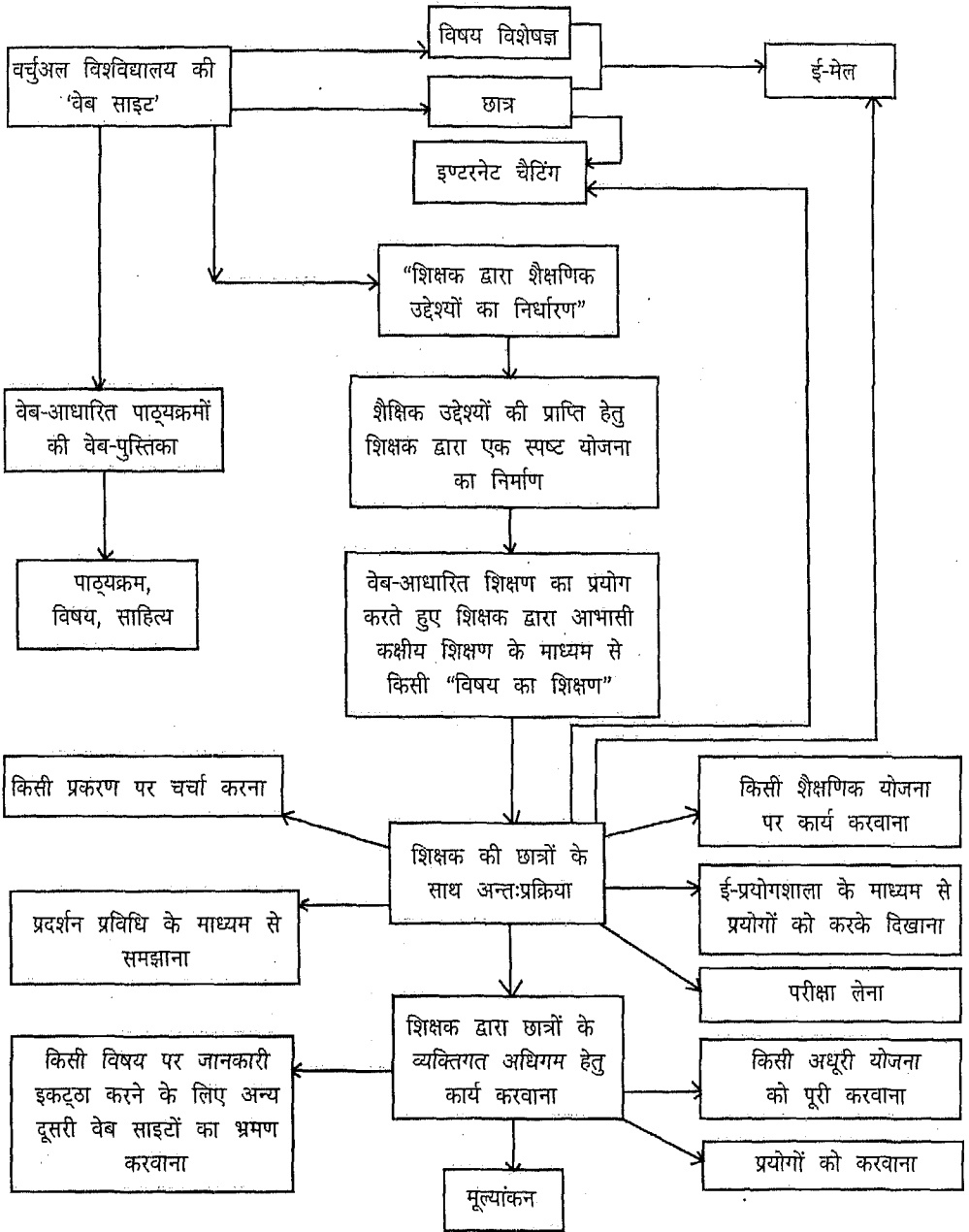
चित्र 3— वेब-आधारित शिक्षण—एक प्रारूप

एकत्र करता है तथा इससे संबंधित संपूर्ण जानकारी जुटाकर सीखना प्रारंभ करता है। इंटरनेट पर सभी जानकारी तथा सूचनाएं वेब पेज के रूप में होती हैं। चूंकि इंटरनेट पर किसी भी प्रकार की जानकारी प्राप्त की जा सकती है तथा सभी जानकारियां एक-दूसरे से परस्पर जुड़ी हुई होती हैं, इसलिए इन पेजों को "वेब पेज" कहते हैं। बहुमाध्यम युक्त वेब पेजों के माध्यम से अधिगमकर्ता को ध्वनि, चित्र, आलेख, एनीमेशन युक्त पाठ पढ़ने की सुविधा प्राप्त होती है। इस अधिगम का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि अधिगमकर्ता स्वतन्त्र रूप से स्थान तथा समय को नकारते हुए अपनी व्यक्तिगत सीखने की गति से शिक्षा ग्रहण कर सकता है। इस प्रकार के अधिगम में शिक्षक का कार्य एक मार्गदर्शक के समान होता है जो छात्रों की अधिगम प्रक्रिया के लिए योग्य परिस्थितियों का निर्माण करता है। छात्र तथा शिक्षक इंटरनेट चैटिंग के माध्यम से एक-दूसरे से संपर्क स्थापित कर सकते हैं तथा प्रश्न इत्यादि पूछने के लिए छात्र तथा शिक्षक एक-दूसरे को चैटिंग के माध्यम से ठीक प्रकार समझ सकते हैं, जो कि शिक्षण के लिए पहली शर्त है। छात्र किसी भी समस्या पर शिक्षकों, विषय-विशेषज्ञों तथा अन्य छात्रों से उनकी राय जान सकते हैं तथा उचित सहायता प्राप्त कर सकते हैं। वेब-आधारित शिक्षा में छात्र तथा शिक्षक के मध्य सम्प्रेषण स्थापित करने में ई-मेल की मुख्य भूमिका होती है। छात्र अपने लिखित कार्य, परियोजनाओं इत्यादि को पूरा करके मूल्यांकन हेतु शिक्षक के पास ई-मेल के माध्यम से भेज सकते हैं। इसके अतिरिक्त छात्र अपनी समस्याओं को लिखित रूप में शिक्षक के पास भेज सकते हैं। शिक्षक छात्रों को ई-मेल के माध्यम से समस्याओं के हल, पृष्ठपोषण तथा मूल्यांकन के परिणाम भेज सकते हैं। चित्रीय रूप में वेब-आधारित अधिगम प्रक्रिया फ्लोचार्ट के रूप में चित्र 4 से समझी जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने जनवरी 1999 को वेब-आधारित शिक्षा का शुभारम्भ किया। प्रारंभ में इग्नू में सी.आई.सी, बी.सी.ए तथा एम.सी.ए. वेब-आधारित पाठयक्रमों में छात्रों का पंजीकरण किया तथा इन पाठ्यक्रमों की सफलता को देखते हुए इग्नू आगे और वेब-आधारित पाठ्यक्रमों में छात्रों के पंजीकरण की ओर प्रयासरत है। इन पाठ्यक्रमों में छात्रों के पंजीकरण के पश्चात् इग्नू द्वारा इंटरनेट पर अध्ययन सामग्री के अन्तर्गत एक गुप्त संख्या (पासवर्ड) दिया जाता है, जिसके माध्यम से वह इग्नू की वेब साइट पर आभासी कक्षा में शिक्षा ग्रहण कर सकता है। इग्नू के वेब-आधारित पाठ्यक्रमों की प्रारम्भिक सफलता को निम्न तालिका से स्पष्टतः समझा जा सकता है।

सत्र 1999, 2000 तथा 2001 में इग्नू द्वारा संचालित वेब-आधारित पाठ्यक्रमों में छात्रों का पंजीकरण दर्शाती तालिका

	कार्यक्रम				
सत्र	*सी.आई.सी.* (CIC)	*बी.सी.ए.* (BCA)	*एम.सी.ए.* (MCA)	*बी.आई.टी.* (BIT)	*ए.डी.आई.टी.* (ADIT)
जनवरी 1999	26663	16629	8534	—	—
जुलाई 1999	15743	2538	3472	1250	700
जनवरी 2000	32259	38060	28547	—	—
जुलाई 2000	17201	14679	14008	—	—
जनवरी 2001	51627	32044	25656	1850	650
जुलाई 2001	25851	22425	20289	—	—
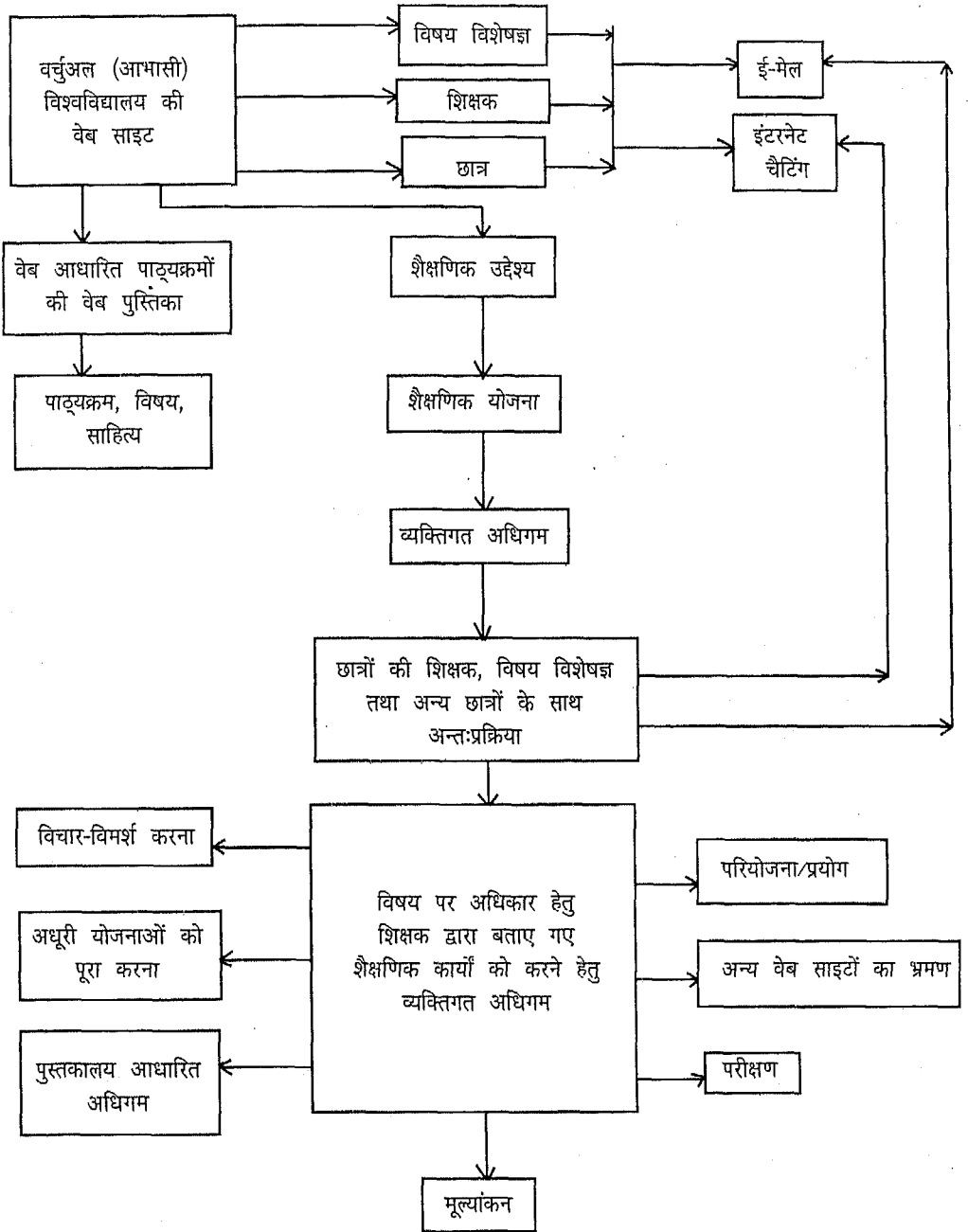
चित्र 4— वेब-आधारित अधिगम— एक प्रारूप

सी.आई.सी. – सर्टीफिकेट इन कम्प्यूटिंग
बी.सी.ए. – बैचलर इन कम्प्यूटर एप्लीकेशन
एम.सी.ए. – मास्टर इन कम्प्यूटर एप्लीकेशन
बी.आई.टी. – बैचलर ऑफ इन्फॉरमेशन टेक्नोलॉजी
ए.डी.आई.टी. – एडवान्स्ड डिप्लोमा इन इनफॉरमेशन टेक्नोलॉजी

इस समय अन्ना विश्वविद्यालय, तमिल वर्चुअल विश्वविद्यालय इत्यादि कई विश्वविद्यालय वेब-आधारित शिक्षा प्रदान करने की दिशा में प्रयासरत हैं तथा कुछ वेब-आधारित डिप्लोमा तथा सर्टीफिकेट कोर्स प्रदान कर रहे हैं।

वेब-आधारित शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के लाभ

- ☐ शिक्षक तथा छात्रों के बीच दो-तरफा सजीव संवाद स्थापित किया जा सकता है।
- ☐ किसी भी विषय से संबंधित सम्पूर्ण तथा नवीनतम जानकारी हमेशा वेब साइट पर उपलब्ध हो सकती है।
- ☐ किसी भी प्रकरण से संबंधित नवीनतम तथा उपयोगी जानकारी कुछ ही क्षणों में प्रदान/ग्रहण की जा सकती है तथा ऊर्जा, धन तथा समय की बचत की जा सकती है।
- ☐ अमूर्त संप्रत्ययों को चित्रों, एनीमेशन तथा खेल-विधि द्वारा सुगमता से समझाया जा सकता है।
- ☐ पूर्ण रूप से व्यक्तिगत अधिगम संभव है।
- ☐ उच्च शिक्षा में छात्रों के बढ़ते पंजीकरण के भार से मुक्ति।
- ☐ बच्चों से लेकर वयस्कों तथा विकलांग लोगों जैसे, विभिन्न लक्ष्य वर्गों के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है।
- ☐ छात्रों में विषय के प्रति रुचि, जिज्ञासा और उत्तेजना उत्पन्न की जा सकती है।
- ☐ ई-मेल, न्यूज ग्रुप, इंटरनेट चैटिंग इत्यादि के माध्यम से उच्च शिक्षा तथा शोध कार्यों में गुणात्मक वृद्धि की जा सकती है।

शिक्षकों के लिए सुझाव

- ☐ सूचना तथा सम्प्रेषण तकनीकी के संबंध में अपनी समझ को बढ़ाएं तथा इस संबंध में और अधिक जानकारी प्राप्त करें।
- ☐ कम्प्यूटर तथा इससे संबंधित उपकरणों को जानें तथा कम्प्यूटर प्रशिक्षण प्राप्त करें।
- ☐ अपने शिक्षण के दौरान परिस्थिति के अनुकूल छात्रों में सूचना तथा सम्प्रेषण के नए-नए माध्यमों के प्रति रुचि जाग्रत करें।
- ☐ इंटरनेट तथा इससे संबंधित प्रणाली के प्रयोग में दक्षता प्राप्त करें।
- ☐ शिक्षा के क्षेत्र में इंटरनेट से होने वाले लाभ तथा इसकी सीमाओं से छात्रों को अवगत कराएं।

☐☐

शिक्षक शिक्षा विभाग
स्प्रिंगडेल महिला महाविद्यालय
बरेली, उत्तर प्रदेश

मौलिक कर्तव्य व शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम–दशा और दिशा

❑ मोहिनी अग्रवाल

मौलिक कर्तव्यों का ज्ञान तथा उनका पालन करने की आदत का विकास छात्राध्यापकों में करना उनके महत्वपूर्ण दायित्व की दृष्टि से अत्यावश्यक नजर आता है। इसके लिए वर्तमान शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम व कार्यक्रम में सकारात्मक परिवर्तन करके आदर्श नागरिकों के निमार्ण हेतु भावी अध्यापकों को योग्य बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए जिससे कि वे भारत जैसे लोकतांत्रिक देश को सुयोग्य नागरिक देने योग्य बन सकें।

नागरिकों को अपने राज्य तथा समाज के हित की दृष्टि से जो आचरण करने होते हैं, वे आचरण ही कर्तव्य कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में कर्तव्य वह मानव धर्म है जिसे करना मनुष्य और समाज के लिए श्रेयस्कर होता है तथा जिसे न करना मानव तथा समाज दोनों के लिए अहितकर होता है। इस प्रकार उचित व अनुचित के मध्य अन्तर समझते हुए व्यक्ति अपने जिन दायित्वों का निर्वहन करता है, उन्हें कर्तव्य की संज्ञा दी गई है। भारतीय संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम सन् 1976 द्वारा संविधान में नागरिकों के लिए 10 मूल कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। नागरिकों द्वारा इनका समुचित पालन किया जाए, इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक होगा कि उन्हें इसके विषय में पूरी जानकारी दी जाए। ऐसा तभी संभव हो सकेगा जब जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, चाहे वे शिक्षण संस्थाएं हों या शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएं, इनके विषय में उन्हें समुचित शिक्षा देने की व्यवस्था की जाए। इसके लिए राज्य को योजनाबद्ध रूप से कार्य करना होगा। अध्यापक शिक्षा द्वारा प्रत्येक विद्यालयी अध्यापक को ऐसा सामर्थ्य प्रदान करना होगा जिससे वह छोटे बच्चों में देश की प्रभुसत्ता तथा अखण्डता की रक्षा के लिए प्रतिबद्धता तथा आवश्यकता पड़ने पर स्वेच्छापूर्वक राष्ट्रीय सेवा द्वारा राष्ट्र की रक्षा का भाव जागृत कर सके। प्रत्येक नागरिक को धार्मिक, भाषायी तथा अन्य विविधताओं के बावजूद भारत के लोगों के बीच समान भाईचारे की भावना का विकास करना होगा। स्त्रियों की मर्यादा के विरुद्ध अपमानजनक व्यवहार को समूल नष्ट करना होगा। मिली-जुली संस्कृति वाली भारतीय परम्परा की सुरक्षा, प्राकृतिक वातावरण के विकास तथा संरक्षण की आवश्यकता भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। इन गुणों को बढ़ावा देने वाली शिक्षा ही ऐसे राष्ट्र का निर्माण कर सकती है जो निरन्तर उच्च स्तर के प्रयत्न और उपलब्धि से युक्त होकर ऊंचा उठने का प्रयास करता है।

शिक्षा सामाजिक पुनर्निर्माण का एक प्रभावशाली माध्यम है तथा काफी सीमा तक यह समाज की समस्याओं का समाधान भी करती है। ये समस्याएं, आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, नैतिक, पारिस्थितिक तथा शैक्षिक हो सकती हैं। बच्चों की शिक्षा में अध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः उसकी अपनी शिक्षा का अत्यधिक महत्व हो जाता है। यही कारण है कि अध्यापक शिक्षा द्वारा अध्यापकों को अपनी नई भूमिका तथा उत्तरदायित्व के प्रति आवश्यक जानकारी कराई जानी चाहिए। भावी अध्यापकों को संविधान में प्रतिष्ठित मूल्यों तथा परम्परा से लिए गए सांस्कृतिक संदर्भगत मूल्यों से भली-भांति परिचित होना चाहिए। इसके लिए छात्राध्यापकों को प्रशिक्षण के दौरान मूल कर्तव्यों का ज्ञान कराना, इसे

पाठ्यक्रम में स्थान देना तथा उससे संबंधित कार्यक्रम आयोजित किया जाना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है; जिससे कि शिक्षक छात्रों को योग्य नागरिक बनाने के कार्य में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर सके। वली (1984) ने पढ़ाने के प्रभाव तथा अध्यापकों के मूल्य का संबंध जानने हेतु शोध किया और पाया कि जो अध्यापक उच्च प्रजातांत्रिक मूल्य रखते हैं, वे तर्कपूर्ण तथा प्रजातांत्रिक गुण संपन्न होते हैं। शिक्षकों की मूल्य संबंधी धारणा की संचरण उनके विद्यार्थियों में प्रभावी ढंग से होती है। जोशी (1988) ने सेवा-पूर्व और सेवारत शिक्षकों के धार्मिक, सामाजिक, सौन्दर्यात्मक ज्ञान, आनन्द से जीने की शक्ति और परिवार की गरिमा संबंधी मूल्यों में सार्थक अन्तर देखा। दोनों ही समूहों ने अधिकार मूल्य की दृष्टि से अधिक अंक प्राप्त किए। सेवा-पूर्व अध्यापकों में प्रशिक्षण से पहले विद्यमान मूल्यों में प्रशिक्षण के बाद परिवर्तन दिखाई देता है। सिंह, एस.सी तथा सिंह, पी. (1986) ने 200 छात्राध्यापकों पर अध्ययन कर बताया कि युक्ति द्वारा मूल्य स्पष्टीकरण करना रूढ़ियों से ज्यादा प्रभावी था। राम (1991) ने वाराणसी के हाईस्कूल कक्षा के विद्यार्थियों में संवैधानिक मूल्यों के विकास का अध्ययन किया। उनके अनुसार भारत के संविधान का मूल विश्लेषण बताता है कि लोकतांत्रिक मूल्यों को इसमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। लिंग, आयु, स्थान तथा अध्ययन पाठ्यक्रम का विद्यार्थियों के संवैधानिक मूल्यों के विकास में सार्थक प्रभाव पड़ता है। ये मूल्य पाठ्यक्रम, आयु स्तर तथा स्थान विशेष से भी प्रभावित होते हैं। अरोड़ा (1993) ने बताया कि मूल्य तथा वैज्ञानिक ज्ञान, शैक्षिक और सामाजिक कारकों से प्रभावित होते हैं।

अतः अध्यापकों में सांस्कृतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तन के प्रति संवेदना विकसित होनी चाहिए। उभरते हुए भारतीय समाज में विद्यार्थियों को उचित शिक्षा तभी प्राप्त हो सकती है जब अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम लोकतांत्रिक मूल्यों, मौलिक कर्तव्यों, मानवाधिकार तथा सांस्कृतिक मूल्यों को समझने की योग्यता का विकास करने वाला हो जिससे कि वे अध्यापक बनने पर विद्यार्थियों में प्रजातांत्रिक जीवन का बीजारोपण कर सकें। शिक्षक के कंधे पर भावी नागरिकों के निर्माण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जिसे वह तभी पूरा कर सकता है जब वह स्वयं एक जिम्मेदार नागरिक हो। क्योंकि अध्यापकों के कार्यकलाप, गुणों तथा भावनाओं का प्रभाव उनके विद्यार्थियों पर अवश्य पड़ता है। अतः अध्यापक प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसमें मौलिक कर्तव्यों से संबन्धित विषय-वस्तु को स्थान दिया जाए। साथ ही उसके विकास हेतु कार्यक्रम भी चलाए जाएं। अध्यापक शिक्षा के महत्व को ध्यान में रखते हुए इसके तहत भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक कर्तव्यों से संबंधित पाठ्यक्रम तथा चलाए जाने वाले कार्यक्रमों को जानने हेतु अध्ययन किया गया।

अध्ययन के उद्देश्य

- ☐ शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में चलाए जा रहे शैक्षिक कार्यक्रमों में मौलिक कर्तव्यों से संबंधित पाठ्यक्रम के बारे में जानकारी प्राप्त करना।
- ☐ मौलिक कर्तव्यों की जानकारी देने हेतु शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों के बारे में जानना।
- ☐ पाठ्यक्रम में वर्णित कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की समीक्षा करना।
- ☐ राज्य स्तरीय विश्वविद्यालय तथा केन्द्रीय संस्थानों के शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम व कार्यक्रम क्रियान्वयन स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- ☐ अध्यापकों में मौलिक कर्तव्यों की शिक्षा हेतु शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता संवर्द्धन हेतु सुझाव देना।

अध्ययन विधि

शोध के उक्त उद्देश्यों के संदर्भ में वर्णनात्मक सर्वेक्षण शोध विधि के अन्तर्गत विश्लेषणात्मक व तुलनात्मक शोध विधियों को अपनाया गया।

शोध उपकरण

शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के तहत पढ़ाए जाने वाले

मौलिक कर्तव्यों की जानकारी प्राप्त करने हेतु वाराणसी शहर के सभी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के पाठ्यक्रमों को एकत्र किया गया। मौलिक कर्तव्यों पर आधारित कार्यक्रमों की जानकारी प्राप्त करने हेतु अनुसूची का निर्माण किया गया। इस अनुसूची में 17 पद थे व प्रत्येक पद पर शिक्षकों द्वारा बताए गए कार्यक्रम का प्रतिशत् निर्धारण शिक्षकों की सहमति के आधार पर किया गया।

प्रतिदर्श

वाराणसी शहर के सभी सात शिक्षण संस्थानों में अध्यापनरत शिक्षक प्रशिक्षकों को आकस्मिक न्यादर्श विधि द्वारा प्रतिदर्श इकाई के रूप में चयनित किया गया। इन शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में कार्यरत कुल 67 शिक्षक प्रशिक्षकों में से 53 शिक्षक प्रशिक्षकों से मौलिक कर्तव्य कार्यक्रम अनुसूची तथा साक्षात्कार द्वारा जानकारी प्राप्त की गई।

परिणाम व सुझाव

शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में मौलिक कर्तव्यों से संबंधित विषय-वस्तु का विवरण– सर्वप्रथम यह अध्ययन किया गया कि शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के पाठ्यक्रम में 10 मौलिक कर्तव्यों में से किन-किन से संबंधित विषय-वस्तु को शामिल किया गया है? इस संदर्भ में जो परिणाम प्राप्त हुए वे निम्नानुसार हैं–

तालिका 1 से स्पष्ट है कि संविधान पालन, उसके आदर्शों का आदर, भारत की प्रभुता, एकता व अखण्डता संबंधी विषय-वस्तु, सामाजिक संस्कृति का महत्व समझना व उसकी रक्षण संबंधी विषय-वस्तु तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने संबंधी विषय-वस्तु सभी केन्द्रीय, राज्य स्तरीय विश्वविद्यालयों तथा संबद्ध महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हैं।

भ्रातृत्व की भावना, धर्मनिरपेक्षता की भावना संबंधी विषय-वस्तु बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ तथा उदय प्रताप कॉलेज के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है।

पर्यावरण की जानकारी सम्बन्धी विषय-वस्तु उदय प्रताप कॉलेज को छोड़कर अन्य सभी केन्द्रीय व राज्य स्तरीय शिक्षक प्रशिक्षण विश्वविद्यालयों में सम्मिलित है। परन्तु सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा, उच्च आदर्शों का पालन तथा राष्ट्र को आगे बढ़ाने हेतु किसी भी प्रकार की विषय-सामग्री, किसी भी शिक्षक प्रशिक्षण विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल नहीं है। अतः इन कमियों को दूर करने के लिए निम्न सुझावों पर अमल करना चाहिए।

- ☐ धर्मनिरपेक्षता संबंधी विषय-वस्तु को सभी शिक्षक प्रशिक्षण विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए।
- ☐ संविधान का पालन तथा उच्च आदर्शों का आदर करने की भावना के विकास हेतु महापुरुषों की जीवनी को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना चाहिए।
- ☐ पर्यावरण के प्रति जागरूकता तथा उसके संरक्षण की भावना विकसित करने हेतु व्यापक विषय-वस्तु शामिल करनी चाहिए।
- ☐ राष्ट्र की उन्नति का प्रयास करने की भावना के विकास हेतु सफल व्यक्तियों की जीवनी के अध्ययन को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए।
- ☐ पर्यावरण के प्रति जागरूकता तथा उसके संरक्षण की भावना को विकसित करने हेतु व्यापक विषय-वस्तु शामिल करनी चाहिए।
- ☐ राष्ट्र की उन्नति का प्रयास करने की भावना के विकास हेतु सफल व्यक्तियों की जीवनी के अध्ययन को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए।
- ☐ शारीरिक शिक्षा हेतु स्वास्थ्य पोषण विज्ञान, रोग तथा उनसे सुरक्षा संबंधी विषय-वस्तु को शामिल करना चाहिए।

मौलिक कर्तव्यों की जानकारी देने हेतु आयोजित कार्यक्रमों का विश्लेषण–मौलिक कर्तव्यों पर आधारित कार्यक्रमों से संबंधित अनुसूची के कथनों पर शिक्षकों द्वारा प्रदत्त मत का प्रतिशत् निर्धारण करने पर ज्ञात हुआ कि प्रार्थना का कार्यक्रम सभी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में नहीं कराया जाता जबकि ऐसा करना धार्मिक संस्कारों को छात्रों में स्थापित करने तथा धर्मनिरपेक्षता की भावना उत्पन्न करने में भी सहायक होगा। जिन

तालिका 1
मौलिक कर्तव्यों पर आधारित विषय-वस्तु विवरण तालिका

क्र. सं.	मौलिक कर्तव्य	केन्द्रीय वि.वि. BHU	MGKV	राज्यस्तरीय वि.वि. SSU	U.P.C.	पूर्वांचल वि.वि. H.D.C.
1.	संविधान का पालन, उसके आदर्शों का आदर	✓	✓	✓	✓	✓
2.	राष्ट्रीय आन्दोलनों को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों का पालन	×	×	×	×	×
3.	भारत की प्रभुता, एकता, अखण्डता संबंधी विषय-वस्तु	✓	✓	✓	×	✓
4.	भ्रातृत्व की भावना, धर्मनिरपेक्षता की भावना संबंधी विषय-वस्तु	✓	✓	×	✓	×
5.	राष्ट्र की सेवा संबंधी विषय-वस्तु	×	×	×	×	×
6.	सामाजिक संस्कृति का महत्व समझना और उसके रक्षण संबंधी विषय-वस्तु	✓	✓	✓	✓	✓
7.	पर्यावरण की जानकारी संबंधी विषय-वस्तु	✓	✓	✓	×	✓
8.	वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने संबंधी विषय-वस्तु	✓	✓	✓	✓	✓
9.	सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा और हिंसा से दूर रहने की भावना संबंधी विषय-वस्तु	×	×	×	×	×
10.	व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों द्वारा राष्ट्र का निरन्तर आगे प्रयास संबंधी विषय-वस्तु	×	×	×	×	×

BHU : Banaras Hindu University
MGKV : Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith
SSU : Sampurnanand Sanskrit University
U.P.C. : Uday Pratap College
HDC : Harishchandra Degree College

संस्थानों में प्रार्थना होती भी है वहां प्रार्थना का स्रोत वेद, उपनिषद् आदि ग्रंथ ही हैं। महापुरुषों की कहानी, ग्रन्थ से उद्धरण तथा दैनिक प्रमुख समाचार की चर्चा प्रमुख विचारों के अन्तर्गत होती है, पर इन विचारों का प्रयोग कुछ शिक्षक ही कक्षा शिक्षण के दौरान करते हैं। सामूहिक रूप से इन विचारों को प्रस्तुत नहीं किया जाता और न ही इसके लिए कोई विशेष आयोजन होता है।

शारीरिक कार्यक्रम की जानकारी प्राप्त करने पर *ज्ञात हुआ कि बसंत कॉलेज को छोड़कर अन्य किसी* भी संस्थान में इसकी कोई विशेष व्यवस्था नहीं है।

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में राष्ट्रध्वज फहराने की परम्परा भी नहीं पाई गई। यह कार्य सम्मिलित रूप से विश्वविद्यालय/सम्बद्ध महाविद्यालय में एक स्थान पर होता है, जिसमें छात्राध्यापकों की उपस्थिति लगभग नगण्य होती है, ऐसा शिक्षक प्रशिक्षकों का मत रहा।

सांस्कृतिक कार्यक्रम की व्यवस्था बसंत कॉलेज तथा आर्य महिला डिग्री कॉलेज में ही है। इनमें भी छात्राध्यापकों की भागीदारी कम ही है।

पर्यावरण जागरूकता के विकास हेतु वृक्षारोपण सभी संस्थानों में कराया जाता है पर अन्य कोई कार्यक्रम नहीं होता। वर्तमान ज्ञान/विज्ञान के विकास के संबंध में नवीनतम जानकारी देने हेतु भी वास्तविक रूप में कोई कार्यक्रम नहीं होता।

इन कार्यक्रमों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में मौलिक कर्तव्यों के प्रशिक्षण हेतु कार्यक्रमों की व्यवस्था करने के लिए व्यापक स्तर पर संशोधन करने की आवश्यकता है।

पाठ्यक्रम में वर्णित कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की समीक्षा—इस हेतु शिक्षा विभाग/संकाय के शिक्षक प्रशिक्षकों से साक्षात्कार द्वारा जानकारी प्राप्त की गई कि उनके संस्थान में कौन-कौन से कार्यक्रम कराए जाते हैं? शिक्षक प्रशिक्षकों से पूछने पर यह ज्ञात हुआ कि स्काउटिंग/गाइडिंग के प्रशिक्षण तथा वृक्षारोपण कार्यक्रम को कराने की व्यवस्था प्रत्येक संस्थान में है, जबकि रेडक्रास तथा भवन साज-सज्जा के कार्यक्रम बी. एच. यू., बसंत कॉलेज तथा आर्य महिला डिग्री कॉलेज में ही कराए जाते हैं। शारीरिक शिक्षा, खेलकूद, व्यक्तित्व विकास तथा सृजनात्मकता के विकास हेतु कार्यक्रम किसी भी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में अलग से कराए जाने की जानकारी प्राप्त नहीं हुई।

राज्य स्तरीय व केन्द्र स्तरीय संस्थानों में मौलिक कर्तव्यों पर आधारित कार्यक्रमों का तुलनात्मक अध्ययन—राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (N.C.T.E.) द्वारा प्रस्तावित दस्तावेज (1999) में माध्यमिक स्तर पर *शिक्षक प्रशिक्षण के अन्तर्गत मौलिक कर्तव्यों से संबंधित* निम्न कार्यक्रमों को शामिल करने की बात की गई है—

- समुदाय आधारित कार्यक्रमों सहित क्षेत्रीय कार्य।
- सृजनात्मक तथा व्यक्तित्व विकास कार्यक्रम।
- शारीरिक शिक्षा।
- खेलकूद कार्यक्रम।
- सौन्दर्यात्मक विकास संबंधी कार्यक्रम तथा गतिविधियां।
- क्रियात्मक अनुसंधान संबंधी अध्ययन।

वाराणसी शहर के शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में इस सूची से संबंधित जिन कार्यक्रमों का आयोजन संबंधित संकाय/विभाग में होता है उनकी जानकारी शिक्षक प्रशिक्षकों से साक्षात्कार द्वारा तथा पाठ्यक्रम में संलग्न कार्यक्रम की जानकारी प्राप्त करके की गई। इसके आधार पर बनाई गई तालिका 2 में एन.सी.टी.ई. द्वारा प्रस्तावित कार्यक्रम सूची से संबंधित जिन क्रियाओं हेतु कार्यक्रम कराए जाते हैं, उस कार्यक्रम के आगे संबंधित विश्वविद्यालय के स्तम्भ में सही (✓) का निशान लगाया गया है तथा जो कार्यक्रम नहीं कराए जाते उनके आगे गलत (×) का निशान लगाया गया है।

तालिका 2 से स्पष्ट होता है कि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में समुदाय आधारित क्षेत्रीय कार्य कराया जाता है। इसके अन्तर्गत वहां प्रौढ़ शिक्षा या साक्षरता कार्यक्रम हेतु शिविर का आयोजन होता है। सृजनात्मकता तथा व्यक्तित्व विकास हेतु एस.यू.पी.डब्ल्यू. तथा स्वच्छता कार्यक्रम चलाया जाता है। शारीरिक शिक्षा हेतु गाइडिंग का प्रशिक्षण दिया जाता है, खेलकूद का आयोजन नहीं होता। सौन्दर्यात्मक विकास हेतु विद्यालय या बगीचे का

तालिका 2
राज्य स्तरीय तथा केन्द्र स्तरीय विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों में मौलिक कर्तव्यों से संबंधित कार्यक्रम क्रियान्वयन तालिका

क्र. सं.	पाठ्य-सहगामी क्रियाएं (एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रस्तावित)	बी.एय.यू.	बसन्त कॉलेज	आर्य महिला डिग्री कॉलेज	म.गां. का.वि.	सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि.वि.	यू.पी. कॉलेज	हरिश्चन्द्र डिग्री कॉलेज
1.	समुदाय आधरित कार्यक्रमों सहित क्षेत्रीय कार्य	✓	✓	✓	×	×	×	×
2.	सृजनात्मक तथा व्यक्तित्व विकास कार्यक्रम	✓	✓	✓	×	×	×	×
3.	शारीरिक शिक्षा	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
4.	खेलकूद							
5.	सौन्दर्यात्मक विकास संबंधी कार्यक्रम तथा गतिविधियां	✓	✓	✓	×	×	×	×
6.	क्रियात्मक अनुसंधान संबंधी अध्ययन	×	×	×	✓	×	×	×

बी.एच.यू. : बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
म.गां.का.वि. : महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ

सौन्दर्यकरण कार्यक्रम कराया जाता है। क्रियात्मक अनुसंधान संबंधी योजना नहीं बनाई जाती। बसंत कॉलेज तथा आर्य महिला डिग्री कॉलेज के शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत इन्हीं कार्यक्रमों को कराए जाने की व्यवस्था है क्योंकि वे बी.एच.यू. से संबद्ध हैं। महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ में समुदाय आधारित कार्यक्रम तथा सृजनात्मक विकास हेतु भी कार्यक्रम नहीं कराए जाते। शारीरिक शिक्षा हेतु स्काउटिंग/गाइडिंग का प्रशिक्षण दिया जाता है। क्रियात्मक अनुसंधान संबंधी अध्ययन हेतु पर्यावरण शिक्षा की क्रियात्मक अनुसंधान योजना बनवाई जाती है।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में केवल स्काउटिंग/गाइडिंग के प्रशिक्षण की व्यवस्था है, अन्य कोई कार्यक्रम नहीं कराया जाता। हरिश्चन्द्र डिग्री कॉलेज तथा उदय प्रताप कॉलेज के शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में स्काउटिंग/गाइडिंग तथा शैक्षिक पर्यटन का आयोजन ही किया जाता है, अन्य कार्यक्रम नहीं होते।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के अनुदेशन का पालन करने हेतु सभी शिक्षक प्रशिक्षण विश्वविद्यालयों तथा माहविद्यालयों को पाठ्य-सहगामी क्रियाकलाप में संशोधन करने की आवश्यकता है। शिक्षक प्रशिक्षण

कार्यक्रम के तहत निम्न कार्यक्रमों को शामिल करना इस दृष्टि से उपयुक्त है–

- प्रौढ़ों को साक्षर बनाने हेतु कार्यक्रम।
- खेलकूल तथा सफाई के कार्यों का निर्धारण।
- सफलता की कहानियों को तैयार कर उन्हें समुदाय में फैलाना।
- त्यौहारों का सामूहिक आयोजन।
- जनकल्याण संबंधी प्रदर्शनी का आयोजन।
- व्यक्तित्व विकास हेतु निर्देशन कार्यक्रम।
- क्रियात्मक अनुसंधान संबंधी अध्ययन योजना।
- सौन्दर्यात्मक विकास हेतु विद्यालय व बगीचे का सौन्दर्यकरण कार्यक्रम।

मौलिक कर्तव्यों के प्रशिक्षण हेतु शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु सुझाव–किसी ज्ञानोन्मुख समाज हेतु शिक्षा एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। अध्यापक शिक्षा पर भी यह बात समान रूप से लागू होती है। अध्यापक शिक्षा को कार्यान्वियन स्तर पर व्यावहारिक रूप दिया जाना आवश्यक है। सेवा-पूर्व अध्यापक शिक्षा की पाठ्यचर्चा में लोकतांत्रिक मूल्यों के सापेक्ष पुनर्रचना की जानी चाहिए। अध्यापक शिक्षा का क्रियाकलाप विस्तृत होना चाहिए इसमें सार्वभौमिक शिक्षा, निरक्षरता उन्मूलन, सामुदायिक नेतृत्व, शारीरिक शिक्षा तथा पर्यावरण शिक्षा जैसे मुद्दों को व्यावहारिक रूप से शामिल किया जाना आवश्यक है। वाराणसी शहर में शिक्षा विभागों/संकायों के शिक्षकों से व्यक्तिगत रूप से इन कार्यक्रमों के आयोजन के बारे में जानकारी प्राप्त करने पर कई विसंगतियां सामने आईं। मौलिक कर्तव्य कार्यक्रम अनुसूची से प्राप्त उत्तरों तथा व्यक्तिगत रूप से साक्षात्कार में शिक्षकों द्वारा दिए गए उत्तरों में भी पर्याप्त अन्तर मिला। अतः कार्यक्रमों के पुनर्संयोजन हेतु निम्न सुझावों पर अमल करने से अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रम में अवश्य ही गुणात्मकता का विकास होगा।

- छात्राध्यापकों को नागरिक कर्तव्यों तथा अधिकारों के बारे में प्रशिक्षित करना चाहिए, जिससे कि वे स्वयं इसका पालन करें तथा दूसरों को भी ऐसा करने हेतु प्रेरित करें।
- प्रतिदिन प्रार्थना कार्यक्रम से प्रशिक्षण की शुरुआत होनी चाहिए। प्रार्थना के अन्तर्गत सर्वधर्म प्रार्थना सभा, मौन धारण, अपने ईष्टदेव का स्मरण, महापुरुषों के वचन तथा दैनिक प्रमुख समाचार को शामिल करना चाहिए। प्रार्थना सभा का अन्तिम कार्यक्रम राष्ट्रगान होना चाहिए।
- प्रार्थना के बाद थोड़े समय हेतु योगाभ्यास की व्यवस्था अनिवार्य रूप से प्रतिदिन होनी चाहिए। इससे छात्राध्यापकों में एकाग्रता, इच्छाशक्ति, तंत्रिकापेशीय कौशलों का विकास तथा स्वयं पर नियंत्रण रखने की क्षमता का विकास होगा।
- प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी को कम से कम एक प्रमुख खेल तथा दो प्रकार की क्रीड़ाओं में भाग लेना अनिवार्य हो। इसके लिए सप्ताह में एक दिन खेलकूद का आयोजन तथा वर्ष में एक बार खेलकूद प्रतियोगिता का भी आयोजन होना चाहिए।
- अवकाश के समय मनोरंजक गतिविधियों के संगठन की क्षमता बढ़ाने हेतु कार्यक्रम होने चाहिए।
- राष्ट्रीय त्यौहारों का विधिवत् आयोजन होना चाहिए। इस हेतु राष्ट्रध्वज फहराने, खेलकूद व सांस्कृतिक कार्यक्रमों की व्यवस्था होनी चाहिए।
- विभिन्न धर्मों के त्यौहार मिलजुलकर मनाने की व्यवस्था हो। इससे सामाजिक समरसता व एकता की भावना का विकास होगा।
- क्षेत्र की संस्कृति का ज्ञान उसके संरक्षण व संवर्द्धन हेतु दिया जाए।
- पर्यावरण के प्रति जागरूकता के विकास हेतु वृक्षारोपण, विशेषज्ञों के भाषण व प्रदर्शनी का आयोजन होना चाहिए।
- कम्प्यूटर के उपयोग का ज्ञान छात्राध्यापकों को देना चाहिए जिससे कि वे शिक्षा में हुए नए प्रयोगों को जानकर अपने ज्ञान को अद्यतन कर सकें।
- विज्ञान प्रदर्शनी, मेले तथा विद्वानों के भाषण का आयोजन ज्ञान-विज्ञान के विकास हेतु होना चाहिए।
- शिक्षा विभाग/संकाय की सम्पत्ति की सुरक्षा का कार्यभार तथा उसके सौन्दर्य को बढ़ाने हेतु योजना

का कार्यभार छात्राध्यापकों को सौंप देना चाहिए। शिक्षक प्रशिक्षकों को इन कार्यों पर नजर रखनी चाहिए तथा आवश्यकता पड़ने पर मार्गदर्शन भी देना चाहिए।

- छात्राध्यापकों को अपने व्यक्तित्व में उपस्थित गुणों को पहचानने, उनका विकास करने तथा उन्हीं के अनुसार आगे बढ़ने के प्रयास हेतु उद्धत करने के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाने चाहिएं।
- एन.सी.सी., एन.एस.एस. तथा स्काउटिंग/गाइडिंग प्रशिक्षण कार्यक्रमों को अनिवार्य रूप से कराया जाना चाहिए। इससे देश प्रेम व देश की सुरक्षा करने की भावनाओं को बल मिलेगा।

अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रम में इन परिवर्तनों को लाने से अवश्य ही भावी अध्यापक मौलिक कर्तव्यों के प्रति अधिग जागरूक हो सकेंगे तथा इनका निर्वाह कर सकेंगे। वे परिवर्तन जिनमें वित्तीय सहायता की आवश्यकता नहीं है, पहले कार्यान्वित किए जाने चाहिए। शिक्षा पर, विशेष रूप से अध्यापक शिक्षा पर, किया गया व्यय राष्ट्र के भविष्य के लिए निवेश के रूप में है। अतः अन्य कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु भी यथासंभव वित्तीय सहायता केन्द्र व राज्य सरकारों को शिक्षा विभाग/संकाय को उपलब्ध करानी चाहिए, जिससे वे अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रम में लोकतांत्रिक मूल्यों के विकास हेतु सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकें।

शैक्षिक निहितार्थ

मौलिक कर्तव्यों से संबंधित पाठ्यक्रमों तथा शैक्षिक कार्यक्रमों से प्राप्त परिणामों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा दिए जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रम में परिवर्तन कर उसमें लोकतांत्रिक मूल्यों, मौलिक कर्तव्यों, मानवाधिकार, सामुदायिक गतिशीलता, राष्ट्रीय और स्थानीय त्यौहारों तथा प्रजातांत्रिक भावना के बीजारोपण संबंधी बातों का उल्लेख किया जाए तो मौलिक कर्तव्यों के प्रति छात्राध्यापकों में सकारात्मक परिवर्तन परिलक्षित हो सकेगा।

- मौलिक कर्तव्यों को छात्राध्यापकों के जीवन मूल्यों से जोड़ने हेतु शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में ऐसा वातावरण उपलब्ध कराया जाए कि ये स्वतः ही उनमें आत्मसात् हो जाएं।
- प्रतिदिन सर्वधर्म प्रार्थना सभा का आयोजन कर छात्राध्यापकों को धर्मनिरपेक्षता का सार्थक पाठ पढ़ाया जा सकता है।
- सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन से अपने देश की संस्कृति को जानने, समझने तथा भाईचारे की भावना को बढ़ाने में मदद मिल सकती है।
- प्रतिदिन शारीरिक कार्यक्रम के आयोजन द्वारा उन्हें स्वास्थ्य के प्रति जागरूक कर सकते हैं और ऐसे ही संस्कार छात्रों में डालने हेतु उन्हें प्रेरित कर सकते हैं।
- मौलिक कर्तव्यों से संबंधित शैक्षिक कार्यक्रम का आयोजन कर छात्रों में इनके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न किया जा सकता है।
- शैक्षिक क्षेत्र में उपलब्धि के ऊंचे स्तर को पाने हेतु विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाएं तो छात्राध्यापकों को उत्कर्ष की ओर बढ़ने का प्रयास करने हेतु अग्रसर किया जा सकता है जिससे निश्चय ही राष्ट्र की भी प्रगति होगी।

निष्कर्ष

मौलिक कर्तव्यों का ज्ञान तथा उनका पालन करने की आदत का विकास छात्राध्यापकों में करना उनके महत्वपूर्ण दायित्व की दृष्टि से अत्यावश्यक नजर आता है। इसके लिए वर्तमान शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम व कार्यक्रम में सकारात्मक परिवर्तन करके आदर्श नागरिकों के निर्माण हेतु भावी अध्यापकों को योग्य बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए जिससे कि वे भारत जैसे लोकतांत्रिक देश को सुयोग्य नागरिक देने योग्य बन सकें। ☐☐

के 30/75, घासी टोला
चौखम्भा, वाराणसी
उत्तर प्रदेश

प्राचीन भारतीय शिक्षा की चौंसठ कलाएं

❑ रमेश सिंह

प्राचीन समय में शिक्षा में चौंसठ कलाओं के अध्ययन की व्यवस्था थी। उस समय शिक्षा के तीन प्रमुख उद्देश्य थे जो आज भी शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य हैं– ● ज्ञान की वृद्धि ● सदाचार की प्रवृति तथा ● जीविकोपार्जन में सहायता। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु तत्कालीन पाठयक्रम को अति व्यापक बनाया गया तथा इसमें उक्त सभी विषयों का समावेश किया गया। संक्षेप में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को ध्यान में रख कर ही शिक्षा का यह क्रम निश्चित किया गया था।

शिक्षा के क्षेत्र में हमारा देश प्राचीन समय से ही अग्रणी रहा है। वैदिक काल हो या उत्तर वैदिक काल, ब्राह्मण काल हो या बौद्ध काल, भारत ने हमेशा ही शिक्षा के क्षेत्र में नित नए प्रसंगों की खोज की है। इसीलिए प्राचीन काल में हमारे देश को अनेक प्रकार की शिक्षा तथा उच्च आदर्शों के कारण जगत-गुरु कहा जाता था। भारतीय लोग विविध प्रकार की शिक्षाओं के ज्ञाता तथा अनेक कलाओं में प्रवीण थे। गणित में शून्य (0) की कल्पना की बात हो, चाहे अर्थशास्त्र के रचयिता चाणक्य के भौतिक विचारों की, या पाणिनि के व्याकरण की, अर्जुन की धनुर्विधा हो या भीम की गदा कला, राजा दशरथ के शब्द भेदी बाण हों या नल-नील, जामवन्त की पुल निर्माण कला, सभी का सम्बंध प्राचीन भारत की शिक्षाओं से है। यहां की शिक्षा का क्षेत्र बहुत व्यापक था, इनसे संबंधित प्रचुर सामग्री वेदों तथा पुराणों में विद्यमान है। जिन कलाओं की शिक्षा उस समय दी जाती थी उनकी संख्या अनन्त है, किन्तु शुक्राचार्य के नीतिसार ग्रन्थ में प्रमुख रूप से चौंसठ कलाओं को वर्णित किया गया है। शुक्राचार्य ने नीतिसार में लिखा है– "शक्तो मूकोऽपि यत् कर्तुकलासंज्ञंतु तत् स्मृतम।" इसी प्रकार पुराणों में भगवान श्रीकृष्ण को चौंसठ कलाओं से युक्त अर्थात् चौंसठ कलाओं में दक्ष बताया गया है। ऐसा माना जाता है कि उन्हें इन सभी कलाओं की शिक्षा दी गई थी।

शुक्राचार्य के कथनानुसार इन चौंसठ कलाओं के नाम अलग-अलग नहीं हैं अपितु उनके लक्षण अलग-अलग हैं। जो व्यक्ति जिस कला का अवलम्बन करता है, जिस कला को सीखता है तथा जिस कला में दक्षता प्राप्त करता है, उसकी जाति उसी कला के नाम से जानी जाती है। उदाहरणस्वरूप, जो व्यक्ति भोजन बनाने की कला का अवलम्बन करता तथा उसमें दक्षता ग्रहण करता है, उसे भोजन बनाने का दक्ष माना जाता है। इस प्रकार भोजन बनाने में दक्षता हासिल करना "पाक कला" के नाम से जाना जाता है। प्राचीन भारत की चौंसठ कलाओं का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है।

नृत्य-कला–प्राचीन शिक्षा की चौंसठ कलाओं में नृत्य को प्रथम स्थान प्राप्त है। हाव-भाव आदि के साथ गति करने की क्रिया को नृत्य कहा जाता है। यह कला हमारे देश में अति प्राचीन काल में उन्नत दशा में थी। इस संदर्भ में भगवान शंकर का ताण्डव नृत्य प्रसिद्ध है जो वर्तमान में 'कत्थक नृत्य' के नाम से, पूर्ण रूप

से, विकसित अवस्था में है। प्राचीन काल में इस कला की शिक्षा राजकुमारों व अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के लिए आवश्यक समझी जाती थी। कहा जाता है कि अर्जुन द्वारा अज्ञातवास काल में राजा विराट की कन्या उत्तरा को वृहन्नला का रूप धारण कर इस कला की शिक्षा दी गई थी। वर्तमान में भी समाज के सभी सभ्य व पिछड़े वर्गों में इस कला का अस्तित्व विद्यमान है।

वादन-कला—नृत्य व गायन को प्रभावी व आकर्षक बनाने हेतु अनेक प्रकार के वाद्यों व यंत्रों को बजाने का ज्ञान तथा इन वाद्य-यंत्रों का उपयोग करना वादन कला कहलाती है। यह कला मुख्य रूप से गायन से संबंध रखती है, क्योंकि बिना वाद्य-यंत्रों के गायन में मधुरता लाना असंभव है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में भारत में प्रमुख वाद्य वीणा थी। विद्या देवी सरस्वती और नारद की वीणा, श्रीकृष्ण की बांसुरी, शिव का डमरू तथा चिमटा प्रसिद्ध वाद्यों के रूप में चर्चित हैं। संस्कृत में वाद्य विषयों के अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें उनके विभिन्न समय में उपयोग करने की विधियां मिलती हैं। राज्याभिषेक, विवाह उत्सव, यात्रा उपनयन संस्कार व विभिन्न मांगलिक कार्यों के अवसरों पर भिन्न-भिन्न वाद्यों का उपयोग होता था।

वस्त्र व अलंकरण सज्जा कला—प्राचीन कालीन राजपरिवारों तथा उच्च घरानों के लोगों का नृत्य हो या संगीत समारोह, राज्याभिषेक हो या अन्य मांगलिक समारोह, आकर्षक वस्त्र व सुन्दर आभूषणों का अलंकरण किया जाता था। इस हेतु जो शिक्षित कर्मचारी इस कला में पारंगत होते उन्हें ही नियुक्त किया जाता था तथा वे राजा-रानियों आदि का अलंकरण करते थे। यह कला वर्तमान में भी अत्यन्त प्रभावी है, सिनेमा के क्षेत्र में इस कला में पारंगत व्यक्तियों का कार्य विशेष उल्लेखनीय है।

शैया और आस्तरण कला—बिछौना सुन्दर रीति से बिछाया जाए तथा पुष्पों को विभिन्न प्रकार से गूंथा जाए, इसमें दक्षता के गुण को शैया व आस्तरण कला के नाम से जाना जाता था। प्राचीन काल में चाहे राजघरानों के शाही दरबार हों या महाराजाओं व महारानियों तथा नवविवाहित राजकुमारों के शयनकक्ष हों या फिर किसी भी संभ्रान्त परिवार का स्वागत (बैठक) कक्ष हो उन्हें सजाने व आकर्षक बनाने के लिए भी विभिन्न तरीकों को अपनाया जाता था। वर्तमान में भी यह कला देश के प्रत्येक कौने में विद्यमान है।

शल्य-कला—वर्तमान वैज्ञानिक युग में शल्य कला अपने विकास की चरम सीमा पर है। नित नई बीमारियों के उपचारार्थ नई-नई शल्य प्रक्रियाएं विकसित हो रही हैं। लेकिन प्राचीन काल में भी शरीर के किसी भी अंग में कांटा आदि चुभने की पीड़ा को कम करना, फोड़ों आदि की चीर-फाड़ करना, हड्डियों के जोड़ खिसकने व टूटी हड्डियों को जोड़ना आदि भी एक कला के रूप में विकसित थी जो वर्तमान में डाक्टरी सर्जरी के रूप में फल-फूल रही है।

पाक-कला—भोजन मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए मनुष्य किस प्रकार अपने भोजन को स्वादिष्ट बनाता है, यह कला प्राचीन काल से प्रचलित है। प्राचीन काल में हींग, लौंग तथा अन्य विभिन्न प्रकार के कन्दमूल के रस का उपयोग अन्न को पकाने व स्वादिष्ट बनाने के लिए किया जाता था। पुराणों में इस कला के ज्ञाताओं के अनेक उल्लेख हैं। महाभारत की कथा से भी स्पष्ट होता है कि महाराज नल और भीमसेन इस कला में निपुण थे। वर्तमान में यह कला एक व्यवसाय का रूप ले चुकी है तथा यह होटल मैनेजमेन्ट का एक अनिवार्य अंग है।

बागवानी-कला—इस कला के अन्तर्गत वृक्ष, लता, पुष्प आदि लगाने, उनका सरंक्षण व उनसे विविध प्रकार के फल, पुष्प, बीज उत्पन्न करना आता है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में सुरम्य उद्यान, उपवन आदि के अनेक उल्लेख प्राप्त हैं। अग्नि-पुराण तथा शुक्रनीतिसार में इस विषय पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है जिससे प्राचीन काल में इस कला की उन्नत दशा के प्रमाण मिलते हैं। वर्तमान में यह कला विकास की ऊंचाई छू चुकी है व वैज्ञानिक तौर-तरीकों के साथ फल-फूल रही है।

द्यूतक्रीड़ा-कला— इस कला में जुआ खेलना, चौपड़ खेलना, पाशा फेंकना आदि क्रीड़ाओं द्वारा लोगों का मनोरंजन किया जाता था। प्राचीन काल में द्यूत के अनेक प्रकारों के प्रचलित होने का पता चलता है। महाभारत काल में नल, युधिष्ठिर व शकुनि आदि तथा रामायण काल में बाली व सुग्रीव आदि इस कला में निपुण थे। इसी प्रकार उत्तरांचल में प्रचलित गाथा के अनुसार हिंवचल कांठा में चौपड़ खेलने में प्रसिद्ध ज्योतिर्माला को परास्त करने के लिए श्रीकृष्ण ने ब्रह्मकुंवर को भेजा था, लेकिन वर्तमान में यह कला, विकास की अपेक्षा, पतन की ओर अग्रसर है।

कुश्ती कला—कुश्ती कला प्राचीन समय से ही राजपरिवारों व क्षत्रीय परिवारों की वीरता का सूचक रही है। शरीर के जोड़ों पर आघात करते हुए या भिन्न-भिन्न अंगों को खींचते हुए, दो पहलवानों की कुश्ती इस कला के अन्तर्गत आती है। भारत में प्राचीन काल से ही वशिष्ठ गुरु के अधीन यह कला सिखाई जाती थी। श्रीकृष्ण ने कंस की सभा के चाणूर, मुष्टिक आदि प्रसिद्ध पहलवानों को इस कला में पछाड़ा था। भीमसेन और जरासन्ध की कुश्ती कई दिनों तक चलते रहने का उल्लेख महाभारत में है। बाली व सुग्रीव की कुश्ती का वर्णन रामायण में मिलता है। वर्तमान समय में यह कला एक खेल के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी है।

बर्तन बनाने की कला—इस कला के अन्तर्गत प्राचीन काल से मिट्टी, पत्थर, लकड़ी, तांबा, पीतल आदि विभिन्न धातुओं से बर्तन बनाने का कार्य हमारे देश में होता आया है। मनुष्य ने अपनी आवश्यकतानुसार समय-समय पर विभिन्न प्रकार के बर्तनों का आविष्कार किया है जो वर्तमान समय में एक विकसित रूप में हमारे सामने है।

वास्तुकला—इस कला के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के तालाब, बावली, कूप, प्रासाद, भवन आदि के निर्माण के बारे में जानकारी दी जाती है। इसमें यह भी सिखाया जाता है कि किस प्रकार, किस अनुपात के मकानों को बनाने का क्या प्रभाव पड़ता है। प्राचीन काल में अनेक राजा-महाराजाओं ने अपने महलों का निर्माण दक्ष वास्तुकारों से करवाया था। वर्तमान में वास्तुकला अपने चर्मोत्कर्ष पर है।

बहुरूपिया कला—इस कला के अन्तर्गत अनेक प्रकार के रूपों का आविर्भाव करने का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। रामायण में मारीच द्वारा मृग बनना, राम से मिलते समय हनुमान का ब्राह्मण वेश धारण करना, रावण द्वारा साधू का वेश धारण करना, इसी प्रकार की कला थी। वर्तमान में यह कला प्रायः लुप्त है, यदि कहीं है भी, तो जादू के रूप में ही विद्यमान है।

धातु खनन कला—प्राचीन काल में पत्थर, सोना, चांदी, लोहा, कोयला आदि विभिन्न धातुओं को खान से खोदना तथा उन धातुओं की भस्म बनाने की भी एक विशेष कला थी, जिसके द्वारा कोई दक्ष व्यक्ति ही खान में धातुओं का सफलतापूर्वक खनन कर सकता था। वर्तमान में इस कला को वैज्ञानिक यंत्रों ने सुरक्षा प्रदान करके विकसित बना दिया है।

औषधि व धातु मिश्रण कला— विभिन्न प्रकार की धातुओं और औषधियों का परस्पर मिश्रण करना (सिंथेसिस) भी एक कला है, जैसे सोने में तांबा मिलाना, तांबे के साथ पीतल का मिश्रण, विभिन्न औषधियों का मिश्रण कोई ऐसा व्यक्ति ही कर सकता है जो इस कार्य में दक्ष हो। वर्तमान वैज्ञानिक युग में मिश्रण कला का अत्यधिक उपयोग है।

मिश्रित धातुओं को मिश्रण से अलग करने की कला— यदि धातुओं और औषधियों का सफल मिश्रण एक कला है तो मिश्रण से धातुओं को पृथक-पृथक करना भी एक कला है। प्राचीन काल में खानों से धातुएं मिश्रित रूप से प्राप्त होती थीं तो उन्हें अनेलेसिस के माध्यम से पृथक-पृथक किया जाता था। वर्तमान में विभिन्न धातुओं के मिश्रण व औषधियों के मिश्रण के पृथक्करण के कई तरीके हैं; रसायन विज्ञान में तो नित्य ऐसे कई प्रयोग होते रहते हैं।

पैंतरेबाजी की कला—पैर आदि अंगों के विशिष्ट संचालन पूर्वक (पैंतरा बदलते हुए) शस्त्रों का लक्ष्य स्थिर करना और उनको चलाना भी कला है। प्राचीन काल में यह कला भी

प्रसिद्ध थी। वर्तमान में इस कला को वैज्ञानिक रूप से अत्यधिक विकसित किया जा चुका है, जैसे आसमान में हवाई जहाज़ों के करतब इसके उदाहरण हैं।

चित्र आलेखन कला—प्राचीन काल में ही यह कला अपने चर्मोत्कर्ष पर थी। प्राचीन चित्रों को देखने से प्रमाणित होता है कि हमारे देश में यह कला उच्च कोटि तक पहुंची हुई थी। बाणासुर की कन्या उषा की सखी चित्रलेखा इस कला में सिद्धहस्त थी। वह एक बार देखे हुए व्यक्ति का बाद में हू-बहू चित्र बना सकती थी। वर्तमान में इस कला का क्षेत्र अत्यन्त विशाल हो गया है।

वस्त्र निर्माण कला—प्राचीन काल में यह कला बहुत ही उन्नत दशा में थी। विभिन्न प्रकार के सूती व ऊनी वस्त्रों के निर्माण के साक्ष्य हमारे इतिहास में भरे पड़े हैं। प्राचीन काल में हथकरघों की सहायता से ही वस्त्रों का निर्माण होता था। फिर भी कहा जाता है कि ढाका में बनी साड़ी इतनी महीन होती थी कि एक अंगुठी के भीतर रखी जा सकती थी। वर्तमान में इस कला में अत्यन्त निखार आ गया है व वस्त्रों का निर्माण कलकारखानों में हो रहा है।

वस्त्रों को सीने की कला—प्राचीन समय में वस्त्रों को विभिन्न तरह से सीया जाता था जिसमें राजा-महाराजाओं की पौशाकें, आम जनता के वस्त्र तथा स्त्रियों के विभिन्न परिधानों को सीने के अनेक तरीके थे, जो कला के नमूने थे। वर्तमान में वस्त्रों को सीने की कला का नाम परिधान फैशन हो गया है। प्राचीन समय में ठीक ही कहा गया था—"सीवने कंचुकादीनां विज्ञानं तु कलात्मकम्।"

वस्त्रों की सफाई की कला—विभिन्न प्रकार के वस्त्रों जैसे सूती, ऊनी, मखमली आदि की सफाई विभिन्न प्रकार से करना भी एक कला है, यह कला प्राचीन काल से ही प्रचलित है।

वस्त्र रंगने की कला—यह कला प्राचीन काल से ही भारत में घर-घर में थी। इस कला में दक्ष व्यक्ति अपनी पसन्दानुसार वस्त्रों में विभिन्न प्रकार के रंग लगा सकता था। वर्तमान में इस कला ने व्यावसायिक रूप ले लिया है।

स्वर्ण, रजत आभूषणों की निर्माण कला— इस कला के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के स्वर्ण, रजत आभूषणों का निर्माण करना सिखाया जाता है। प्राचीन काल में राजा-महाराजा अपने आभूषणों का निर्माण इस कला में दक्ष स्वर्णकार से ही करवाते थे। वर्तमान में भी यह कला अत्यन्त प्रचलित है।

सोने-चांदी की पहचान की कला—सोने व चांदी के असलीपन को जानना भी कला का एक रूप है। इनसे बने आभूषणों की परख करने के लिए प्राचीन काल में भी राजघरानों में दक्ष सेवक रहते थे। वर्तमान में इस हेतु कई यंत्रों का प्रयोग किया जाता है।

नकली सोने, चांदी व हीरे मोतियों के निर्माण की कला—नकली आभूषणों व रत्नों के निर्माण की कला प्राचीन काल से ही प्रगति के पथ पर अग्रसर थी। प्राचीन काल में भी इस कला में दक्ष लोग आम जनता को धोखा देते रहे हैं। वर्तमान में तो यह कहावत चरितार्थ है कि "असली है कम, नकली में है दम"।

रत्नों को पहचानने की कला—सोने-चांदी की पहचान की भांति ही रत्नों (हीरा, मोती, पुखराज, नीलम आदि) को पहचानने की भी अपनी कला है। प्राचीन काल में अच्छे-बुरे रत्नों की पहचान तथा उनके धारण से होने वाले शुभाशुभ फल का ज्ञान यहां के लोगों को था।

रत्नों में वेध (छिद्र) करने की कला—विभिन्न प्रकार के रत्नों को धारण करने के लिए उनमें छिद्र करने की कला भी प्राचीन काल से ही प्रचलित है। प्राचीन काल में रत्नों में छिद्र करना अत्यन्त मुश्किल था। यह कार्य केवल इस कला में दक्ष व्यक्ति ही कर सकते थे। वर्तमान में यह कार्य यंत्रों की सहायता से किया जा रहा है।

कांच के बर्तन बनाने की कला—यह कला भारत में प्राचीन काल से ही प्रचलित है। वर्ममान में इस कला को और विकसित किया गया है। अब कांच के खिलौने व आधुनिक आकर्षक बर्तनों का निर्माण हो रहा है।

बर्तन मांजने की कला—बर्तन चाहे धातु का हो या लकड़ी का, मिट्टी का हो या कांच का, छोटा हो या बड़ा, इनको मांजने (साफ करने) की भी अपनी एक

अलग कला है जो भारत में प्राचीन काल से घर-घर में चली आ रही है। अब इस कला को निखारने हेतु विभिन्न साधनों का प्रयोग किया जाता है।

लोहे के अस्त्र-शस्त्र बनाने की कला—लोहे के यंत्र बनाने की कला भी हमारे देश में प्राचीन काल से प्रचलित है। एक सूई से लेकर मिसाइल टैंक का निर्माण इस कला के नमूने हैं।

जीन अथवा काठी की कला—यह कला भी भारत में प्राचीन काल से ही प्रचलित है। यात्रा, युद्ध, देशाटन व माल ढोने के लिए भारत में प्राचीन काल से ही विभिन्न पशुओं जैसे हाथी, घोड़ा, गधा, ऊंट आदि का प्रयोग हो रहा है। इन पशुओं की पीठ में सवारी के लिए जीन अथवा काठी का प्रयोग किया जाता है जिसका निर्माण कार्य प्राचीन कला का एक जीवंत नमूना है।

पशुओं समान गति से युद्ध करने की कला— हाथी, घोड़े और रथों की विशिष्ट गतियों से युद्ध करने की कला भी हमारे यहां प्राचीन काल से है जो अब अपनी अन्तिम सांसें गिन रही है।

पशुओं के प्रशिक्षण की कला—रथ हांकने व घोड़ों की विभिन्न प्रकार की गतियों की शिक्षा देना भी एक कला है। युद्ध, सवारी आदि में प्रयुक्त पशुओं को विभिन्न प्रकार से सिखाने की कला भारत में प्राचीन काल से चली आ रही है। यह शिक्षा सभी राजकुमारों के लिए आवश्यक समझी जाती थी।

योग मुद्राओं से देवताओं को प्रसन्न करने की कला—यह कला भी प्राचीन भारत से ही प्रसिद्ध रही है। विभिन्न पुराणों, रामायण व महाभारत के युद्धों में इनका उल्लेख है। वर्तमान में विभिन्न प्रकार के आसन इसी मार्ग का लक्षण हैं।

समय निर्देशन यंत्र निर्माण की कला—प्राचीन काल में समय का निर्देश करने वाले यंत्रों का निर्माण जैसे घड़ी, जलघड़ी, धूपघड़ी, सैलघड़ी बनाना भी एक कला थी।

अनेक प्रकार के आसनों तथा सूरतक्रीडा की कला—इसके अन्तर्गत सात कलाएं हैं जिनका उल्लेख गांधर्व वेद में किया गया है। व्याकरण तथा संगीत का आधारभूत तत्व कलाएं हैं जिनका उल्लेख गांधर्व वेद का मुख्य विषय था। गांधर्व विद्या के दार्शनिक ग्रन्थ प्रायः लुप्त हो चुके हैं, फिर भी नारद, नन्दिकेश्वर, मंतग, कोहल आदि द्वारा प्रणीत ग्रन्थों के प्राप्त भाग से इस विद्या का रहस्य थोड़ा बहुत समझ में आ सकता है।

ईख (इक्षु) से विभिन्न पदार्थ बनाने की कला—सभी प्रकार की ईख से प्राचीन समय से ही विभिन्न प्रकार के पदार्थों जैसे— राब, गुड़, खांड, चीनी, मिश्रीकन्द आदि को बनाने का कार्य दक्षतापूर्वक होता आया है अर्थात् यह कला प्राचीन समय से ही यहां प्रचलित है। वर्तमान में इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया है।

लवण को समुद्र या मिट्टी से निकालने की कला—लवण (नमक) आदि को समुद्र या मिट्टी आदि पदार्थों से पृथक करने की कला हमारे देश में प्राचीन काल से ही चली आ रही है। इस कला के अन्तर्गत दस कलाएं विद्यमान हैं जो आयुर्वेद से संबंध रखती हैं। वर्तमान में यह कला विज्ञान का रूप ले चुकी है।

वाष्प के प्रयोग की कला—वायु, जल व अग्नि के संयोग से उत्पन्न वाष्प से अनेक यंत्र चलाए जाते थे। यह कला प्राचीन काल से ही प्रचलित है। वर्तमान में वाष्प का प्रयोग कई अन्य क्षेत्रों में जैसे कपड़ों की सफाई इत्यादि में भी होने लगा है।

यातायात के साधनों के निर्माण की कला—प्राचीन काल में स्थल, जल व वायुयान के निर्माण के संबंध में लोग अच्छी जानकारी रखते थे तथा उनके निर्माण में भी कई लोगों को दक्षता हासिल थी। वेदों में जहाज़ों के उपयोग का वर्णन मिलता है। उड़नखटोला इसका एक उदाहरण है। कुछ समय पूर्व बंगलौर में वेदों के आधार पर निर्मित पुष्पक विमान को कुछ दूर तक उड़ाया गया।

मृत पशुओं के शरीर से चमड़ा पृथक करने की कला— प्राचीन काल में मनुष्य पशुओं की खालों का विभिन्न प्रकार से उपयोग करता था। इस हेतु मृत पशुओं के शरीर से उसकी खाल (चमड़ा) को बड़ी दक्षता से पृथक किया जाता था। यह कला प्राचीन काल में काफी विकसित थी जो आज भी प्रचलित है।

चमड़े को मुलायम करने की कला—चमड़े को पशुओं के शरीर से पृथक करने के पश्चात् उसे कमाना (मुलायम करना) तथा उससे विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करना भी एक कला है।

दुग्ध उत्पादन कला—विभिन्न प्रकार के पशुओं गाय, भैंस, बकरी इत्यादि को पालना तथा उनसे दूध निकालना व उससे दही, घी, मक्खन, पनीर, मट्ठा आदि का निर्माण करना इस कला के अन्तर्गत आता है।

तैरने की कला—तालाबों, नदियों, झीलों, समुद्रों आदि में तैरना एक विशेष प्रकार की कला है जो मनुष्य की आत्मरक्षा में सहयोगी है। यह कला भारत में प्राचीन काल में ही फल-फूल गई थी। वर्तमान में इस कला का प्रयोग खेलकूद के रूप में किया जा रहा है।

हल चलाने की कला—भारत प्राचीन समय से ही कृषि प्रधान देश रहा है। अतः यहां यह कला प्राचीन काल से ही विकसित है, विभिन्न वेद-पुराणों में इसके प्रमाण उपलब्ध हैं।

पेड़ों पर चढ़ने की कला—पेड़ों पर चढ़ना भी एक कला है। विभिन्न विशालकाय वृक्ष, कंटीले वृक्ष, बिना डाल वाले वृक्षों तथा खजूर, ताड़, नारियल, व सुपारी आदि के पेड़ों पर चढ़ना आम आदमी के लिए असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। पेड़ों पर चढ़ने की कला में दक्ष व्यक्ति ही आसानी से पेड़ों पर चढ़ सकता है।

टोकरे तथा अन्य पात्र बनाने की कला— बांस, ताड़, खजूर, सन, बिमल आदि के पतले तनों व टहनियों से विभिन्न प्रकार के पात्र जैसे टोकरे, कण्डी, गिल्डे (स्थानीय भाषा का शब्द) आदि का निर्माण हमारे यहां प्राचीन काल से ही प्रचलित है। वर्तमान में इस कला में दक्ष व्यक्ति कुटीर उद्योगों से जुड़ गए हैं।

रस्सी बनाने की कला—विभिन्न वृक्षों की छालों व रेशों से रस्सी बनाने की कला भी हमारे देश में प्राचीन काल से प्रचलित है। सूत, सन, नारियल, बिमल, जूट, मूंज, बेबाई (एक प्रकार की पतली घास) से रस्सी बनाने की कला आज भी यहां प्रचलित है।

सींचने की कला—कृषि कार्य में खेतों को अच्छी तरह सींचना, खेत को किस समय पानी की आवश्यकता है, किस फसल को कितने पानी की आवश्यकता है, आदि की जानकारी इस कला के अन्तर्गत आती है जो कृषि कार्य हेतु आवश्यक है।

संहरण कला—इस कला के अन्तर्गत दलदल भूमि के अन्दर से जल को बाहर निकालना तथा उस अतिरिक्त जल को किसी आवश्यकता वाले स्थान पर पहुंचाना शामिल है। इस कला का प्रयोग भी कृषि कार्यों हेतु उपयोगी है।

शिशुओं के पालन-पोषण की कला— सम्भवतया यह सबसे प्राचीन कला है। जन्मजात शिशु की देखभाल करना व उसे स्वस्थ रखने के उपायों की जानकारी, उसका लालन-पालन, भरण-पोषण आदि सुव्यवस्थित ढंग से करना भी एक कला है जो प्रत्येक माता-पिता के लिए नितान्त आवश्यक है।

बच्चों के लिए खिलौने बनाने की कला— बच्चों के संरक्षण, शिक्षा आदि के साथ-साथ उसके मनोरंजन व स्वास्थ्य वृद्धि के लिए खेलने हेतु विभिन्न प्रकार के खिलौनों का निर्माण भी एक कला है। इस कला का प्रचलन भी हमारे यहां प्राचीन काल से ही होता आया है, यथा— "शिशोः संरक्षणे, ज्ञान धारणे क्रीड़ने कलाः"

हजामत बनाने की कला—पुरुष आकर्षकता व चेहरे की सुन्दरता हेतु हजामत बनाने की कला का सहारा लेता है। यह कला प्राचीन समय से प्रचलित है तथा वर्तमान समय में विकसित अवस्था में है। गलियों, बाजारों में ही नहीं अपितु धार्मिक स्थलों में भी इस कार्य को करने वाले अनेक लोग मिलते हैं।

मनोनुकूल सेवा करने की कला—दूसरे व्यक्ति की इच्छाओं, भावनाओं को जानना व उसके अनुकूल ही उसकी सेवा करना भी एक कला है जो हमारे यहां प्राचीन समय से प्रचलित है। राजसेवक, शिष्य आदि के लिए इस कला को जानना परम आवश्यक है। इस कला को न जानने वाला किसी को प्रसन्न नहीं कर सकता।

मकरन्दों से आसव तथा मद्य निर्माण की कला—विभिन्न प्रकार के मकरन्दों से विभिन्न प्रकार के आसव (जूस) तथा मद्य (मदिरा) बनाना भी एक कला है, जैसे आम का जूस,

गुलाब का रस, सेब की मदिरा, मण्डुवा की मदिरा आदि।

पान की रक्षा करने की कला—पान चबाने का प्रचलन भी भारत में प्राचीन काल से ही रहा है। अतः पान को अधिक दिनों तक सुरक्षित रखना भी एक कला है अर्थात् ऐसे उपाय करना जिससे पान बहुत दिनों तक न सूखने पाए और न सड़े-गले। आज भी बहुत से ऐसे तमोली हैं जो मगही पान को महीनों तक ज्यों का त्यों रखते हैं।

तिलहन पदार्थों से तेल निकालने की कला— विभिन्न प्रकार के तिलहन पदार्थों से तेल निकालने की कला भी हमारे यहां प्राचीन समय से प्रचलित है। प्राचीन समय में मनुष्य जहां अपने हाथों से इस कार्य को अन्जाम देते थे वहीं वर्तमान में मशीनों की सहायता से यह कार्य किया जा रहा है।

मुष्टि प्रहारों से शत्रु पर झपटने की कला— किसी व्यक्ति से अपनी रक्षा करनी हो या शत्रुता का बदला चुकाना हो तो बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के कृत और प्रतिकृत आदि अनेक तरह के अति भंयकर मुष्टि प्रहारों से अकस्मात् शत्रु पर झपटना एक कला है जो वर्तमान में जूडो-कराटे के रूप में हमारे समक्ष है।

अभिलक्षित स्थान पर मंत्रों से अस्त्र फेंकने की कला— हमारा देश ऋषि-मुनियों व तपस्वियों का देश रहा है। युद्ध व आक्रमण आदि के समय मंत्रों का जाप करके विभिन्न प्रकार के अस्त्रों को अभिलक्षित देश या स्थान में फेंके जाने की कला हमारे यहां प्राचीन काल से प्रचलित है। वर्तमान में यह कला लक्ष्य भेदी राकेटों, बिना पायलेट के विमान व मिसाइलों के रूप में हमारे समक्ष है।

अपराधियों को दण्ड देने की कला—किस अपराधी ने क्या अपराध किया है तथा उसे किस प्रकार का दण्ड मिलना चाहिए इसका ज्ञान भी एक कला है अर्थात् अपराधी को अपराध के अनुसार दण्ड देने का ज्ञान भी एक कला है। वर्तमान में न्यायधीश व पंच-परमेश्वर इसी कला का उपयोग करते हैं।

विभिन्न देशों की लिपि को सुन्दरता से लिखने की कला—भारत इस कला में प्राचीन काल से ही उन्नत रहा। इसका प्रमाण है महाभारत जैसा सवा लाख श्लोकों वाला ग्रन्थ, आदि से अन्त तक यह एक ही सांचे के अक्षरों में लिखा गया है। कहीं एक अक्षर भी छोटा या बड़ा नहीं है, स्याही भी सब जगह एक समान है। उसके अलावा भी, अनेक ग्रन्थ इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

काष्ठकला—यह कला प्राचीन समय से ही भारत में अत्यधिक प्रसिद्ध है। इसके अन्तर्गत लकड़ी के विभिन्न प्रकार के फर्नीचर, उपकरण, बर्तन, खिलौने, आदि का निर्माण करना तथा लकड़ी से बनी सभी सामग्रियों पर विभिन्न प्रकार की सुन्दर कलाकृतियां उकेरना तथा भवन निर्माण में काष्ठ का सुन्दरता से प्रयोग शामिल है।

वाद्य यंत्रों की निर्माण कला—विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्रों, जिनका प्रयोग प्राचीन काल से होता आया है उनका निर्माण करना, जैसे वीणा, डमरू, खड़क, हारमोनियम, मशकबा आदि भी एक कला है जो प्राचीन समय से ही प्रचलित है। कई प्राचीन ग्रन्थों में इनके निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन है।

आदान कला—बिना कर्म के कुछ भी संभव नहीं है इसलिए हमें प्रत्येक लक्ष्य प्राप्ति के लिए कार्य करने की आवश्यकता है। किसी भी कार्य को फुर्ती से करने की कला आदान कला कहलाती है।

प्रतिदान कला—किसी भी कार्य को चिरकाल तक करते रहने की समर्थता को प्रतिदान कहा जाता है अर्थात् कोई व्यक्ति किसी कार्य को कितने अधिक समय तक कर सकता है, उसकी इस सामर्थ्य को प्रतिदान कहते हैं।

इस प्रकार प्राचीन समय में शिक्षा में उन चौंसठ कलाओं के अध्ययन की व्यवस्था थी। उस समय शिक्षा के तीन प्रमुख उद्देश्य थे जो आज भी शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य हैं— • ज्ञान की वृद्धि • सदाचार की प्रवृति व • जीविकोपार्जन में सहायता। इन उद्देश्यों की पूति हेतु तत्कालीन पाठयक्रम को अति व्यापक बनाया गया था, जिसमें उक्त सभी विषयों का समावेश किया गया। संक्षेप में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को ध्यान में रख कर ही शिक्षा का यह क्रम निश्चित किया गया था।

राजकीय स्नातक महाविद्यालय
कोटद्वार, गढ़वाल
उत्तरांचल

प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण– एक विश्लेषण

❑ प्रदीप कुमार सिंह

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के प्राथमिक शिक्षा व साक्षरता विभाग द्वारा 6-14 वर्ष की उम्र के सभी बच्चों के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था उपलब्ध कराने के लिए 'सर्व शिक्षा अभियान' नामक योजना चलाई जा रही है। इसे 28 राज्यों, 7 केन्द्र शासित प्रदेशों, 593 जनपदों तथा 6.4 लाख गांवों में रहने वाले 6-14 वर्ष तक के सभी बच्चों को कम से कम 8 वर्ष तक की स्कूली शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए प्रारम्भ किया गया है। इस कार्यक्रम का लक्ष्य वर्ष 2003 तक सभी बच्चों को स्कूल, शिक्षा गारन्टी केन्द्रों, वैकल्पिक विद्यालयों या बैक टू स्कूल शिविरों में लाना है, साथ ही वर्ष 2007 तक सभी बच्चों द्वारा पांच वर्ष की शिक्षा सम्पन्न करना तथा 2010 तक सभी बच्चों द्वारा आठ वर्ष की प्राथमिक शिक्षा सम्पन्न करना है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास हेतु शिक्षा अति आवश्यक है। इसलिए देश के सभी व्यक्तियों को शिक्षित किए बिना देश में उपलब्ध मानव संसाधन का सम्पूर्ण रूप से उपयोग नहीं किया जा सकता। देश के संपूर्ण मानव संसाधन का संपूर्ण रूप से उपयोग किए बिना देश को सशक्त व विकसित राष्ट्र नहीं बनाया जा सकता। भारत को एक सशक्त व विकसित राष्ट्र बनाने के लिए यह आवश्यक है कि सभी भारतीयों को कम से कम प्राथमिक स्तर की गुणात्मक शिक्षा प्रदान की जाए। भारत के राष्ट्रपति माननीय ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने भारत को 2020 ई. तक विकसित राष्ट्र बनाने का आह्वान किया है। भारत आर्थिक व तकनीकी क्षेत्रों में चाहे जितनी प्रगति कर ले लेकिन जब तक सभी भारतीयों को कम से कम प्राथमिक स्तर तक शिक्षा प्रदान न कर दी जाए, भारत को विकसित राष्ट्र की श्रेणी में लाना कठिन है। अभी भी हम मात्र 65.38 प्रतिशत् (जनगणना 2001) लोगों को ही साक्षर कर पाए हैं।

भारतीय लोकतंत्र की सफलता व लोकतांत्रिक नागरिकता के विकास के लिए भी सभी भारतीयों को शिक्षित करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षित व अपने अधिकारों के प्रति सचेत मतदाता ही उपयुक्त प्रतिनिधियों का चुनाव कर सकते हैं। आज राजनीति में आपराधिक तत्वों का समावेश हो गया है। देश में जातीय, धार्मिक, साम्प्रदायिक व क्षेत्रीय संघर्ष बढ़ रहे हैं। कुछ अवांछित तत्व जनसमूह के अशिक्षित होने का लाभ उठाकर जाति, धर्म, सम्प्रदाय व क्षेत्रीयता की भावना को भड़काकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि भारतीय जनसमूह को प्राथमिक स्तर की शिक्षा निःशुल्क व अनिवार्य रूप से मिले।

आतंकवाद, जनसंख्या वृद्धि, पर्यावरण प्रदूषण, भ्रष्टाचार व स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से निपटने के लिए भी सभी भारतीय बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

इस तरह से देश के सभी व्यक्तियों के वैयक्तिक

विकास के साथ-साथ राष्ट्र व समाज के विकास हेतु प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण किया जाना नितान्त आवश्यक है।

प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण का अर्थ

समान्य रूप से प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण का अभिप्राय 6 से 14 वर्ष आयु-वर्ग तक के सभी बच्चों को उनकी आयु के अनुसार निःशुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने से है।

प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए किए गए प्रयास व वर्तमान स्थिति—बसु, डी.डी. के अनुसार भारत के संविधान की धारा 45 में संविधान लागू होने के 10 वर्षों के भीतर 6-14 वर्ष तक के देश के सभी बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने की बात कही गई है। इसके बावजूद प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार (93वां संविधान संशोधन, नवम्बर 2002) बनाने में लगभग 52 वर्षों का समय लग गया जबकि इस कार्य को 1960 ई. के लगभग तक सम्पन्न कर दिया जाना चाहिए था।

केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा प्राथमिक शिक्षा के सावभौमीकरण के लिए समय-समय पर प्रयास किए गए हैं। यह बात अलग है कि उन प्रयासों को सफलता कितनी मिली। इसके लिए केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा कई योजनाएं चलाई जा रही हैं जैसे प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, सभी के लिए शिक्षा परियोजना, स्कूल चलो अभियान, बिहार शिक्षा परियोजना, लोक जुम्बिश, महिला समाख्या कार्यक्रम, दोपहर का भोजन कार्यक्रम आदि।

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम 1994 में शुरू किया गया था। अब यह देश के 242 जिलों में लागू है। इसका लक्ष्य देश के सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना है। सभी के लिए शिक्षा परियोजना, विश्व बैंक द्वारा, उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए चलाई जा रही एक परियोजना है। लोक जुम्बिश को राजस्थान में स्वीडन के सहयोग से 1992 में शुरू किया गया था। इसका लक्ष्य लोगों के सहयोग व भागीदारी से सभी के लिए शिक्षा प्राप्त करना है। महिला समाख्या कार्यक्रम आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, केरल, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश और असम के 53 जिलों के 9000 गांवों में शुरू किया गया है। इसका लक्ष्य महिलाओं को सशक्त, आत्मर्निभर व शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराना है। दोपहर के भोजन कार्यक्रम का लक्ष्य स्कूलों में बच्चों का दाखिला व उपस्थिति सुधारना तथा स्कूलों में उनके लिए पौष्टिक आहार उपलब्ध कराना है। लेकिन इन परियोजनाओं के चलने के बावजूद देश के सभी बच्चों को सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने की दिशा में अपेक्षित प्रगति नहीं हो सकी है। नई शिक्षा नीति– 1986 में यह लक्ष्य रखा गया था कि सन् 2000 ई. तक 6-14 वर्ष तक के सभी बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध करा दी जाएगी। कार्य योजना (1992) में भी पुनः उपर्युक्त लक्ष्य प्राप्ति हेतु संकल्प लिया गया। 1993 में नई दिल्ली में दुनिया के नौ सबसे अधिक आबादी वाले देशों के शिखर सम्मेलन में भी सन् 2000 ई. तक उपर्युक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के संकल्प को दोहराया गया। लेकिन वास्तविकता यह है कि अब सन् 2000 बीत चुका है और हम 21वीं सदी के प्रथम चरण में प्रवेश कर चुके हैं फिर भी प्राथमिक शिक्षा के सावभौमीकरण की दिशा में कुछ खास प्रगति नहीं हो सकी है। पाण्डेय, 2002 के अनुसार "... अब देश को 6 से 14 वर्ष की उम्र के लगभग 19 करोड़ बच्चों के लिए समुचित प्राथमिक शिक्षा की पक्की व्यवस्था सुनिश्चित करनी है। इन 19 करोड़ बच्चों में से लगभग साढ़े तीन करोड़ बच्चे ऐसे भी हैं जो पढ़ाई से वंचित हैं। पढाई से वंचित इन साढ़े तीन करोड़ बच्चों में ढाई करोड़ लड़कियां शामिल हैं।"

भण्डारी, हिन्दुस्तान टाइम्स, 2001 के अनुसार उच्चतम न्यायालय ने 1993 में उन्नीकृष्ण के मामले में फैसला देते हुए 0 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को मुफ्त अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार घोषित किया लेकिन उस समय ऐसा नहीं हो सका। फिर 93वें संविधान संशोधन, नवंबर 2002 द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया जा चुका है। भण्डारी के

अनुसार यह देश के 0-6 वर्ष आयु समूह के 16 करोड़ बच्चों के साथ धोखा है, क्योंकि 1993 में उच्चतम न्यायालय ने 0-14 वर्ष तक आयु वाले बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार घोषित किया था लेकिन 93वां संशोधन केवल 6-14 वर्ष तक के बच्चों के लिए ही है।

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के प्राथमिक शिक्षा व साक्षरता विभाग द्वारा 6-14 वर्ष की उम्र के सभी बच्चों के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था उपलब्ध कराने के लिए 'सर्व शिक्षा अभियान' नामक योजना चलाई जा रही है। इसे 28 राज्यों, 7 केन्द्र शासित प्रदेशों, 593 जनपदों व 6.4 लाख गांवों में रहने वाले 6-14 वर्ष तक के सभी बच्चों को कम से कम 8 वर्ष तक की स्कूली शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए प्रारम्भ किया गया है। इस कार्यक्रम का लक्ष्य है– वर्ष 2003 तक सभी बच्चों को स्कूल, शिक्षा गारन्टी केन्द्रों, वैकल्पिक विद्यालयों या बैक टू स्कूल शिविरों में लाना है, साथ ही वर्ष 2007 तक सभी बच्चों द्वारा पांच वर्ष की शिक्षा सम्पन्न करना तथा 2010 तक सभी बच्चों द्वारा आठ वर्ष की प्राथमिक शिक्षा सम्पन्न करना।

इस प्रकार से अब शिक्षा एक मौलिक अधिकार है तथा सर्व शिक्षा अभियान द्वारा 2010 तक सभी बालकों को आठ वर्ष की प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करना है। इसका उत्तर तो आने वाला समय ही देगा, लेकिन जिस प्रकार से हम लक्ष्य को लगातार आगे की तरफ बढ़ाते जा रहे हैं उससे तो यही लगता है कि सरकार इसके प्रति गंभीर नहीं है, अथवा गंभीर होते हुए भी कुछ कर नहीं पा रही है, अथवा सरकार पलायनवादी दृष्टिकोण अपना रही है। अतः कटु सत्य यही है कि वर्तमान प्रगति को देखकर उपर्युक्त लक्ष्य निश्चित समय अवधि में पूर्ण होते नहीं दिखते।

प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण में बाधाएं

यह सत्य है कि प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना है। फिर यह भी सत्य है कि पिछले 54-55 वर्षों में प्राथमिक शिक्षा और साक्षरता में काफी सुधार हुआ है। इस बीच साक्षरता दर 1951 के 18.30 प्रतिशत् से बढ़कर 2001 में 65.38 प्रतिशत् हो गई है। विष्णु नागर, 2001 के अनुसार "स्कूलों में लड़कियों का नामांकन आजादी मिलने के समय लगभग 50 लाख था, आज बढ़कर 4.80 करोड़ हो गया है। आज लड़कियों के नामांकन की दर लड़कों की अपेक्षा अधिक है। सरकार का यह भी दावा है कि 94 प्रतिशत् ग्रामीण जनसंख्या को 1 किमी. के भीतर प्राथमिक स्कूलों की सुविधा उपलब्ध है और उच्च प्राथमिक स्कूल की सुविधा 85 प्रतिशत् ग्रामीण आबादी को प्राप्त है।" लेकिन फिर भी स्कूलों में गंभीर समस्याएं विद्यमान हैं– जैसे स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं का अभाव है, भवनों की हालत खस्ता है, बहुत सारे स्कूल तम्बुओं में चल रहे हैं, आदि। वस्तुतः प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के मार्ग में निम्नलिखित बाधाएं हैं–

- इस दिशा में सर्वप्रमुख रुकावट अपव्यय व अवरोधन है। पाण्डेय, 2002 के अनुसार "यदि हम कुछ वर्ष पूर्व के आंकड़ों पर नजर डालें तो पाएंगे कि कक्षा एक में यदि तीन करोड़ पांच लाख बच्चों ने प्रवेश लिया तो कक्षा पांच में उनकी संख्या घटकर लगभग एक करोड़ के करीब रह गई तथा यही संख्या कक्षा आठ में घटकर लगभग 1 करोड़ पच्चीस लाख रह गई। बालिकाओं की संख्या जहां कक्षा एक में लगभग 1.35 करोड़ की थी, वह कक्षा आठ तक घटकर 50 लाख के करीब बची है।"
- लैंगिक भेदभाव भी प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के मार्ग में बाधक है। प्रायः हमारे समाज में लड़कियों को शिक्षा देने के प्रति भेदभाव बरता जाता है। इसलिए महिला साक्षरता की दर भी बहुत ही धीमी गति से बढ़ रही है। डा. सिंह, 2003 के अनुसार 'आज की तारीख में भारत में दो तिहाई निरक्षर लड़कियां हैं। इनमें भी अनुसूचित जाति, जनजाति और मुस्लिम समुदाय में लड़कियों में साक्षरता का प्रतिशत् बहुत ही कम है'। लैंगिक भेदभाव के

सर्वप्रमुख कारण अज्ञानता, गलत परम्पराएं व रूढ़ियां हैं।

- गरीबी अथवा निर्धनता भी प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण में बाधा है। कुछ परिवार निर्धनता के कारण अपने बच्चों को आय हेतु बालश्रम में लगा देते हैं।
- अध्यापकों का अभाव भी प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण में बाधक है। बहुत सारे विद्यालय एक अध्यापक के सहारे चल रहे हैं। कहीं-कहीं तो प्राथमिक विद्यालयों में मात्र एक शिक्षा मित्र ही है। कुरुक्षेत्र, 2003 के अनुसार भारत में शिक्षक छात्र अनुपात 1:64 है। दैनिक जागरण, 2003 के अनुसार "…. मानव संसाधन विकास मंत्री डा. मुरली मनोहर जोशी ने बताया कि उत्तर प्रदेश में 72 बच्चों पर एक शिक्षक है जबकि मानक के अनुसार प्रत्येक 40 बच्चों पर एक शिक्षक होना चाहिए।"
- स्कूलों में न्यूनतम विद्यालयी सुविधाओं का अभाव है। प्राथमिक विद्यालयों में चाक, डस्टर, ब्लैकबोर्ड, टाट-पट्टी, फर्नीचर, शौचालयों तथा भवनों का अभाव है। नई शिक्षा नीति 1986 के सुझावों के आधार पर सन् 1987 में आपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना शुरू की गई जिसका उद्देश्य विद्यालयों में न्यूनतम बुनियादी सुविधाओं को उपलब्ध कराना था।
- पर्याप्त वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता भी प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए अनिवार्य है। कोठारी आयोग 1966 ने सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत् शिक्षा पर खर्च करने का सुझाव दिया था लेकिन आज भी इस लक्ष्य को हासिल नहीं किया जा सका है।
- निरक्षर अभिभावक अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति प्रायः उदासीन होते हैं। इनका शिक्षा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है।
- प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए चलाई जा रही योजनाओं व नीतियों का सही क्रियान्वयन न होना भी निश्चित ही एक बड़ा मुद्दा है। शैक्षिक प्रशासन इन योजनाओं का सही संचालन व क्रियान्वयन नहीं करा पाता, ये ज्यादातर कागज़ी आंकड़ों द्वारा चलाई जाती हैं।

प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के उपाय

प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित उपाय व सुझाव अपेक्षित हैं—

- इसके लिए प्रत्येक बालक के घर के यथासंभव निकट विद्यालयों की सार्वभौम उपलब्धता आवश्यक है। सीमित साधनों के कारण हम जनसंख्या वृद्धि की गति के साथ विद्यालयों को उपलब्ध कराने में असमर्थ रहे हैं। कोठारी आयोग, 1964-66 ने इस संदर्भ में कहा, 'लोअर प्राइमरी स्कूल व अपर प्राइमरी स्कूल बालक के घर से क्रमशः 1 मील तथा 3 मील से अधिक दूर न हों।'
- प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निर्धारित प्रवेश आयु (6 वर्ष) पर सभी बच्चों का विद्यालय में नामांकन करना। नई शिक्षा नीति 1986 में भी इसकी सिफारिश की गई है। देश में इस समय लगभग साढ़े तीन करोड़ बच्चे पढ़ाई से वंचित हैं। सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत 2003 तक सभी बच्चों को स्कूलों में पंजीकृत कराने का लक्ष्य रखा गया है।
- प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बच्चों को अपेक्षित समय तक विद्यालय में रोके रखना होगा। इसका अर्थ है कि दाखिला लिए बच्चों को 14 वर्ष की आयु तक विद्यालयों में पढ़ते रहना। भारत में ऐसे बच्चों की संख्या बहुत है जो विभिन्न कारणों (अनाकर्षक-पाठ्यक्रम, अनुपयुक्त शिक्षा विधि, अध्यापकों का अभाव तथा आर्थिक तंगी आदि) से प्राथमिक शिक्षा पूरी करने से पहले विद्यालय छोड़ देते हैं। अतः अपव्यय व अवरोधन की समस्या का समाधान कर प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त किया

जा सकता है।

- प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौम बनाने के लिए शिक्षा से वंचित बच्चों के लिए औपचारिक शिक्षा के पूरक रूप में अनौपचारिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए। बहुत सारे बच्चे शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखते हुए भी विभिन्न कारणों से शिक्षा पूरी नहीं कर पाते जैसे कुछ लड़के/लड़कियों को अपने छोटे भाई-बहनों की देखभाल करनी पड़ती है कुछ विद्यालय में अनियमित रहने के कारण दण्ड के भय से स्कूल छोड़ देते हैं आदि। नई शिक्षा नीति– 1986 में बीच में स्कूल छोड़ चुके बच्चों, बिना स्कूल वाली बस्तियों के बच्चों, कामकाजी बच्चों और वे लड़कियां जो दिन के स्कूल में पूरे समय नहीं जा सकतीं, इन सबके लिए एक विशाल व व्यवस्थित अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम चलाने की बात कही गई है। कार्य योजना 1992 में भी इस संबंध में सिफारिश की गई। इस दिशा में काफी प्रयास भी हुए हैं लेकिन कार्यक्रमों के उचित क्रियान्वयन न होने के कारण इनको अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी है।
- विद्यालयों को आवश्यक सुविधाओं व उपकरणों से सुसज्जित किया जाना चाहिए। प्रायः अधिकांश विद्यालयों में भवन, श्यामपट, चाक, डस्टर, ग्लोब, मानचित्र, टाट-पट्टी, पुस्तकों, खेल के सामान व शौचालयों आदि का अभाव है। विद्यालयों में उपर्युक्त सुविधाओं को उपलब्ध कराने के लिए 1987 में ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना शुरू की गई लेकिन इसे अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी। नागर 2001 के अनुसार 'ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना के बावजूद दिल्ली और मुम्बई जैसे शहरों के भीतर भी तमाम प्राथमिक स्कूलों के भवनों की हालत खस्ता है।'

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु सरकारी प्रयास ही पर्याप्त नहीं हैं। संवैधानिक प्रावधान मात्र इसे पूरा नहीं कर सकते। वस्तुतः सामाजिक संकल्प व सामुदायिक सहभागिता द्वारा 2010 तक प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण सुनिश्चित किया जा सकता है तभी हम 2020 तक सभी के लिए गुणवत्ता पूर्ण प्राथमिक शिक्षा सुलभ करा पाएंगे।

□□

प्रवक्ता
नेशनल इन्टर कॉलेज भरवारी, कौशाम्बी
उत्तर प्रदेश

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरणीय जागरूकता– एक अध्ययन

❑ राजेश कुमार सिंह

मानव के आसपास का वातावरण पर्यावरण का एक अंग है। वायुमण्डल, भूमि, नदियां, समुद्र, वनस्पति, जीव-जन्तु और यहां तक कि सूक्ष्म बैक्टीरिया और वायरस भी पर्यावरण के विभिन्न अवयव हैं, जो सभी एक-दूसरे से जुड़े हैं; इसलिए इनमें बड़ा परिवर्तन भी पूरे पर्यावरण पर प्रभाव डाल सकता है। पर्यावरण का अर्थ है, प्रकृति के सभी भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों का समूह तथा उनके बीच अन्तर्सम्बन्ध जो समस्त प्राकृतिक क्रियाओं को चलाते हैं। पृथ्वी के चारों ओर जो भी जीवित तथा निर्जीव घटक हैं, ये सब आपस में मिलकर पर्यावरण सन्तुलन का ताना-बाना बुनते हैं तथा जीवन की क्रियाओं को चलाने में मदद करते हैं। विगत कुछ दशकों में आबादी वृद्धि, अनियमित औद्योगीकरण तथा नगरीकरण, फैलती सघन कृषि, वनों का अंधाधुन्ध कटान तथा विकास योजनाओं के कार्यान्वयन में पर्यावरण पहलुओं पर विशेष ध्यान न देने के कारण पर्यावरण सन्तुलन बिगड़ना प्रारम्भ हो गया है। ऐसी परिस्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि समाज का प्रत्येक वर्ग अपने पर्यावरण के प्रति जागरूक होकर तथा अपने उत्तरदायित्वों को समझकर उनका निर्वाह करे।

आज से करीब डेढ़ करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर मानव जाति का उद्‌भव हुआ था। मानव तब हरे-भरे जंगल, झर-झर बहते झरने, कल-कल करतीं नदियां, पशु-पक्षी तथा विशुद्ध प्राण वायु देने वाले वातावरण के बीच रहता होगा। पर देखते-देखते सब कुछ बदल गया। पर्यावरण, विकास की अन्धाधुन्ध दौड़ के साथ-साथ, तेजी से विनाश की तरफ बढ़ता गया। मनुष्य पर्यावरण का अभिन्न अंग है, अतीतकाल से ही मानव तथा पर्यावरण के संबंधों में परिवर्तन होता रहा है। जब मनुष्य ने पत्थरों और धातुओं से उपकरण बनाना शुरू किया तभी से उसे आग के बारे में जानकारी हो गई। तब से वह पर्यावरण को प्रभावित करता आया है।

मोटे तौर पर हम पर्यावरण को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं: प्रथम– भौतिक पर्यावरण, दूसरा– जैविक पर्यावरण। स्थल, जल तथा वायु भौतिक पर्यावरण के तत्व हैं, जबकि जैविक पर्यावरण में पेड़-पौधे व छोटे-बड़े सभी जीवधारी आते हैं। भौतिक तथा जैविक वातावरण एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। भौतिक पर्यावरण के बदलने से जैविक पर्यावरण भी बदल जाता है। भौतिक तथा जैविक पर्यावरण के तत्वों में सदैव कुछ न कुछ परिवर्तन होते रहते हैं। स्थलाकृतियों के स्वरूप में कभी अचानक तो कभी धीरे-धीरे परिवर्तन होते रहते हैं। वायु तथा जल के परिसंचरण के कारण विभिन्न जातियों की जलवायु की दशाओं में परिवर्तन हो जाता है। भौतिक पर्यावरण में कभी-कभी बहुत बड़े परिवर्तन हुए हैं जिससे पेड़-पौधे और जीव-जन्तुओं की कुछ जातियां ही विलुप्त हो गई हैं, यही नहीं भौतिक पर्यावरण के अनुरूप नई जातियों का विकास भी हुआ है।

पर्यावरण शिक्षा

वर्तमान समय में पर्यावरणीय असन्तुलन के कारण पर्यावरण शिक्षा का अत्यधिक महत्व है यह पर्यावरण द्वारा, पर्यावरण के विषय में और पर्यावरण के लिए दी जाने वाली शिक्षा है। यही शिक्षा की विषय-वस्तु तथा पद्धति है। जहां तक पद्धति की बात है इसका अर्थ पर्यावरण को शिक्षण अधिगम तकनीक की तरह प्रयोग करना है। जहां तक विषय-वस्तु अथवा विषय-सामग्री की बात है इसका अर्थ पर्यावरण के घटकों और संघटकों का शिक्षण है। जहां तक पर्यावरण के लिए शिक्षा की बात है, इसका अर्थ पर्यावरण का नियंत्रण, पूर्ण परिस्थिति की संभावना स्थापित करना है जो कृषि भूमि का उत्तराधिकार स्थिर करता है, संसाधनों का संरक्षण करता है तथा पर्यावरण प्रदूषण पर नियन्त्रण भी करता है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन कार्य निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्यों को ध्यान में रखकर संपन्न किया गया।

- माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों का पर्यावरण के प्रति जागरूकता का स्तर ज्ञात करना।
- माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों का पर्यावरण के प्रति जागरूकता के माध्य स्तरों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं का पर्यावरण के प्रति जागरूकता के माध्य स्तरों की तुलना करना।
- कला तथा विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की पर्यावरण जागरूकता के माध्य स्तरों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- पर्यावरण जागरूकता का सामान्यीकरण करना।

परिकल्पना

अध्ययन कार्य सुव्यवस्थित रूप से सम्पादित करने हेतु उपर्युक्त उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं की संरचना की गई है।

- माध्यमिक स्तर के कला तथा विज्ञान वर्ग के छात्रों की पर्यावरणीय जागरूकता का स्तर एक समान है अर्थात् $m_1 = m_2$।
- माध्यमिक स्तर के कला तथा विज्ञान वर्ग की छात्राओं की पर्यावरणीय जागरूकता का स्तर एक समान है अर्थात् $m_3 = m_4$।
- माध्यमिक स्तर पर विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की पर्यावरणीय जागरूकता के स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है अर्थात् $m_2 = m_4$।
- माध्यमिक स्तर पर कला वर्ग के छात्र तथा छात्राओं की पर्यावरणीय जागरूकता का स्तर एक समान है अर्थात् $m_1 = m_3$।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक अनुसन्धान के अन्तर्गत सर्वेक्षण प्रकार का अनुसंधान है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत अध्ययन के लिए सम्भाव्यता सिद्धान्त के आधार पर केवल एक जनसंख्या के प्रतिदर्श द्वारा ही एक सामाजिक अथवा शैक्षिक क्षेत्र से संबंधित एक समस्या या स्थिति के विषय में ऐसे प्रतिनिधि आंकड़े संकलित किए जा सकते हैं। ऐसे प्रतिदर्श के सर्वेक्षण पर आधारित अध्ययनों को ही सर्वेक्षण अनुसंधान कहते हैं।

जनसंख्या तथा प्रतिदर्श

जनसंख्या के रूप में माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश, द्वारा संचालित इण्टरमीडिएट स्तर के कला तथा विज्ञान के विद्यार्थियों को लिया गया है तथा जनसंख्या के आकार को सीमित करते हुए केवल गोरखपुर जनपद को लिया गया है।

प्रतिदर्श— प्रतिचयन हेतु यादृच्छिक विधि द्वारा विद्यालयों का चयन किया गया तथा विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक-गुच्छ प्रतिचयन विधि द्वारा किया गया। इस प्रकार कुल 500 छात्र तथा 500 छात्राओं का चयन किया गया।

प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियां

आंकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, प्रामाणिक विचलन

तथा मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता ज्ञात करने के लिए क्रान्तिक अनुपात का प्रयोग किया गया है।

पर्यावरण जागरूकता प्रश्नावली

प्रश्नावली की संरचना करते समय जल, स्थल, वायु, वनस्पति विज्ञान, जन्तु विज्ञान, भौतिकी, रसायन तथा भूगोल आदि से संबंधित ऐसे सामान्य तथ्यों पर आधारित प्रश्नों की संरचना की गई जिनका संबंध पर्यावरण से है। प्रश्नावली संरचना में विषय विशेषज्ञों तथा उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड, गोरखपुर से सम्पर्क करके जानकारी व सुझाव लिए गए हैं। प्रश्नावली के अन्तिम प्रारूप में 50 पदों को बहु-विकल्पीय प्रश्नों के रूप में रखा गया है।

आंकड़ों का विश्लेषण व व्याख्या

पर्यावरण जागरूकता प्रश्नावली का प्रशासन 1000 विद्यार्थियों पर किया गया तथा मूल्यांकन के उपरान्त इन आंकड़ों के आधार पर मध्यमान, प्रामाणिक विचलन तथा क्रान्तिक अनुपात की गणना करके पूर्व संरचित परिकल्पनाओं की जांच की गई।

परिकल्पना 1— कला तथा विज्ञान वर्ग के छात्रों की पर्यावरणीय जागरूकता का स्तर एक समान है अर्थात् $M_1 = M_2$

	संख्या	*मध्यमान*	*प्रामाणिक विचलन*	*सार्थकता*	*क्रांतिक मान*	*सार्थकता*
कला छात्र	250	31	2.71	.48	7.59	.01 स्तर पर सार्थक है।
विज्ञान छात्र	250	37	2.50			

परिकल्पना 2— कला तथा विज्ञान वर्ग की छात्राओं की पर्यावरणीय जागरूकता का स्तर एक समान है अर्थात् $M_3 = M_4$

	संख्या	*मध्यमान*	*प्रामाणिक विचलन*	*सार्थकता*	*क्रांतिक मान*	*सार्थकता*
कला छात्राएं	250	30	2.65	0.8	7.5	.01 स्तर पर सार्थक है।
विज्ञान छात्राएं	250	36	2.87			

परिकल्पना 3— विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की पर्यावरणीय जागरूकता का स्तर एक समान है अर्थात् $M_2 = M_4$

	संख्या	*मध्यमान*	*प्रामाणिक विचलन*	*सार्थकता*	*क्रांतिक मान*	*सार्थकता*
विज्ञान छात्र	250	37	2.87	.71	1.41	.05 स्तर पर सार्थक है।
विज्ञान छात्राएं	250	36	2.87			

परिकल्पना 4– कला वर्ग के छात्र-छात्राओं के पर्यावरणीय जागरूकता का स्तर एक समान है अर्थात् $M_1 = M_3$

	संख्या	मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	सार्थकता	क्रांतिक मान	सार्थकता
कला छात्र	250	31	2.77	1.23	0.81	.05 स्तर पर सार्थक है।
कला छात्राएं	250	30	2.65			

- **परिकल्पना 1** के लिए क्रान्तिक अनुपात का मान 7.59 प्राप्त हुआ जो .01 स्तर पर सार्थक है। अतः यह कहा जा सकता है कि विज्ञान वर्ग के छात्रों में पर्यावरणीय जागरूकता कला वर्ग के छात्रों की तुलना में अधिक है क्योंकि विज्ञान छात्रों का मध्यमान अधिक है।
- **परिकल्पना 2** के लिए क्रान्तिक अनुपात का मान 7.5 प्राप्त हुआ है जो सार्थकता के .01 स्तर पर सार्थक है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सामान्यतया विज्ञान वर्ग की छात्राओं की पर्यावरणीय जागरूकता कला वर्ग की छात्राओं की तुलना में अधिक है।
- **परिकल्पना 3** के लिए क्रान्तिक अनुपात का मान 1.41 प्राप्त हुआ है जो .05 स्तर पर सार्थक नहीं है जो यह इंगित करता है कि विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की पर्यावरणीय जागरूकता एक समान है।
- **परिकल्पना 4** हेतु क्रान्तिक अनुपात का मान 0.81 प्राप्त हुआ है जो सार्थकता के .05 स्तर पर सार्थक नहीं है, अर्थात् कला वर्ग के छात्र तथा छात्राओं की पर्यावरणीय जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

इस प्रकार इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं में कला वर्ग के छात्र-छात्राओं की तुलना में पर्यावरणीय जागरूकता अधिक है।

शोध कार्य का शैक्षिक महत्व

औद्योगिक क्रान्ति से आबादी का नगरीकरण, आधुनिक सभ्यता का विकास, वैज्ञानिक प्रगति तथा मानव द्वारा लगातार प्रकृति के साथ खिलवाड़ के कारण पर्यावरणीय असन्तुलन बढ़ रहा है। इस असन्तुलन को रोकने के लिए यदि मनुष्यों में समय रहते जागरूकता पैदा नहीं की गई तो सम्पूर्ण जगत विनाश के कगार पर पहुंच जाएगा।

इस परीक्षण में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों का चयन किया गया है क्योंकि किशोरवय विद्यार्थी ही भविष्य में युवा नागरिक होंगे जो या तो पर्यावरण के साथ जारी छेड़छाड़ में सहयोग करेंगे अथवा पर्यावरण की नाजुकता को समझते हुए इसके संरक्षण में अपना योगदान देंगे।

यदि माध्यमिक स्तर के किशोरवय विद्यार्थी अपने पर्यावरण के प्रति जागरूक होंगे तो भविष्य में संभावित एक भयंकर त्रासदी को टाला जा सकेगा। ये विद्यार्थी पर्यावरण के संरक्षण में निम्नलिखित तरीकों से सहयोग कर सकते हैं।

- उद्योग के चारों तरफ तथा घनी बस्तियों, सड़कों के किनारे, खाली बंजर धरती, खेतों की मेड़ व सार्वजनिक स्थानों पर वृक्ष लगाकर तथा वनों का विनाश रोककर।
- सभी जीव-जन्तुओं की सुरक्षा और संरक्षण को बढ़ावा देकर।
- स्वस्थ सुखी जीवन के लिए जनसंख्या पर नियन्त्रण रखकर।
- विकास बनाम विनाश की जारी भयंकर त्रासदी को रोककर।
- अपने इर्द-गिर्द के पर्यावरण को स्वच्छ रखकर प्रकृति के नियमों को सुदृढ़ करते हुए आने वाली पीढ़ी को एक बेहतर वातावरण प्रदान कर सकते हैं।

शिक्षाशास्त्र विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

धूम्रपान और किशोरावस्था

❑ राम प्रकाश सैनी

किशोरावस्था में नशीली दवाओं व नशीले पदार्थों के सेवन की बढ़ती आदत इस सदी की सबसे बड़ी सामाजिक व मनोवैज्ञानिक समस्या है और यह अब विश्वव्यापी रूप ले चुकी है। इस पीढ़ी का झुकाव धूम्रपान की तरफ तेजी से बढ़ा है। 15 से 25 वर्ष की उम्र के लोग इस आदत के ज्यादा शिकार हो रहे हैं। सिगरेट पीने की लत किशोरों के साथ किशोरियों में भी तेजी से बढ़ रही है। धूम्रपान की बढ़ती इस लत ने मां-बाप, अभिभावकों और साथ ही शिक्षकों को भी चिन्तित कर दिया है। ताजा सर्वेक्षण के अनुसार वर्तमान समय में 60 प्रतिशत् छात्र और 40 प्रतिशत् छात्राएं प्रतिदिन पांच से अधिक सिगरेट पीते हैं। हालांकि यह आंकड़ा दिल्ली, मुम्बई और बंगलौर जैसे महानगरों का है, छोटे शहरों में भी यह लत महामारी की तरह फैल रही है जिससे देश के किशोरों की मानसिक व शारीरिक शक्ति नशाखोरी में खोखली होती जा रही है। देश का भविष्य अन्धकारमय होने से बचाने के लिए किशोरों को इस लत से छुटकारा दिलाना आवश्यक है।

प्रतिभा, लगन या दृढ़ इच्छाशक्ति की बात तो आज की किशोर पीढ़ी में देखने को मिल जाएगी। जीवन के सभी क्षेत्रों में नई पीढ़ी अपना लोहा मनवा रही है। कई मामलों में तो यह पीढ़ी पिछली पीढ़ी से भी आगे है। खासकर आज की किशोरियों और युवतियों ने तो सदियों से बनाए गए बन्धनों को तोड़ने में सफलता अर्जित की है। भाग्य पर कम, कर्म पर अधिक विश्वास करने वाली इस पीढ़ी के युवक-युवतियों का मानना है कि—

बढ़ने की तमन्ना है तो मिल जाएगी मंजिल,
रोक ले जो पांवों को वो पत्थर नहीं देखा।

अपने दमखम पर कुछ भी कर गुजरने का संकल्प लेकर आगे बढ़ने वाली इस पीढ़ी की जितनी भी प्रशंसा की जाए, कम है।

कहा जाता है कि हर बात, हर चीज़ व हर परिवर्तन के दो पहलू होते हैं— एक सकारात्मक और दूसरा नकारात्मक। इसी प्रकार किशोर पीढ़ी के अन्दर विद्यमान लगन, दृढ़ इच्छाशक्ति, कर्मठता व अत्यधिक महत्वाकांक्षा भी स्पष्ट तौर पर दो रूपों में दिखाई दे रही है। सकारात्मक प्रभाव के तहत जहां हम उसे चिकित्सा, कला, अभिनय, सेना, विज्ञान आदि के क्षेत्र में सफल होते देख रहे हैं, वहीं नकारात्मक प्रभावों के अन्तर्गत उनके अन्दर समाज की अवहेलना करने की प्रवृत्ति, परम्पराओं से बगावत, पाश्चात्य देशों की लय पर जीवन जीने की लालसा और धूम्रपान जैसे— सिगरेट, शराब का नशा, बीड़ी, तम्बाकू आदि का सेवन करना शौक बन गया है। विशेष रूप से, अमीर परिवारों के किशोरों में यह प्रवृति तेज़ी से पनप रही है। अपनी प्रतिभा व लगन का दुरुपयोग करने में ऐसे परिवार के किशोर व किशोरियां पल भर के लिए भी विचार नहीं करना चाहते।

जब हम आज के किशोर व किशोरियों के दुर्गुणों

का आंकलन करते हैं तो पाते हैं कि इस पीढ़ी का झुकाव धूम्रपान की तरफ तेज़ी से बढ़ रहा है। सिगरेट पीने की लत किशोरों के साथ-साथ किशोरियों में भी तेज़ी से बढ़ी है। धूम्रपान की बढ़ती इस लत से माता-पिता तथा अभिभावक के साथ-साथ शिक्षक भी अत्यधिक चिन्तित हो उठे हैं।

धूम्रपान की भारत में शुरुआत

आज से लगभग 2000 साल पहले हमारे देशवासी धूम्रपान या तम्बाकू पीने-खाने से बिल्कुल अनजान थे। हमारे वैदिक पुराण-उपनिषदों में भी इसका उल्लेख नहीं है। छठी शताब्दी में हर्षवर्धन के समय धूम्रपान का प्रचलन था। उस समय लोग अगरबत्ती, कपूर, कस्तूरी, चन्दन, लौंग, इलायची आदि सुंगधित और स्वास्थ्यवर्धक मसालों को मिलाकर पीते थे। इस धूम्रपान से चारों तरफ सुगन्ध फैल जाती थी और यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक भी नहीं थी।

तम्बाकू भारत में यूरोप के लोगों द्वारा लाया गया। तम्बाकू का अंग्रेजी नाम 'टोबैको' है। इसकी पत्तियों को सुखाकर खाने या सूंघने के काम में लाया जाता है। इसमें पाए जाने वाले नशीले या विषैले तत्व को 'निकोटीन' कहते हैं। इतिहासकारों के अनुसार कोलम्बस 1498 में अमेरिका पहुंचा तो वहां के आदिवासियों को तम्बाकू पीते देखकर वह उस पौधे को स्पेन ले आया। स्पेन में इसका उपयोग दवा के तौर पर शुरू हुआ और इसका नाम 'चिकित्सक जड़ी' या 'पवित्र जड़ी' पड़ा। सन् 1558 में जीन निकट नामक व्यक्ति ने इसके नशीले प्रभाव व मानव शरीर पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव की छानबीन की और फ्रांस की महारानी केथराइन के पास अपनी जानकारी भेजी, तभी से उसके सम्मान में तम्बाकू में पाए जाने वाले द्रव का नाम 'निकोटियाना' रखा गया।

स्पेन से तम्बाकू इंग्लैण्ड पहुंच गया। प्रसिद्ध ब्रिटिश लेखक डायमण्ड स्पेन्सर (1562-1599) ने इसे 'देवीजड़ी' कहा था। परन्तु तब इग्लैण्डवासियों को धूम्रपान का तरीका मालूम नहीं था। 1651 के आसपास वर्जीनिया प्रान्त के गवर्नर शल्पसेन तथा सर फान्सिस ने इंग्लैण्ड के प्रमुख राजनीतिज्ञ सर वाल्वट रैले को इसका उपयोग बताया। तब उन्हें यह धूम्रपान इतना पसन्द आया कि जब उन्हें 1618 में सम्राट के विरुद्ध विद्रोह करने के कारण फांसी की सजा दी गई तो वे पाइप पीते हुए वहां तक गए थे।

यूरोपियन इसे भारतवर्ष में कब लाए, इस बात का ठीक पता तो नहीं चलता, पर पुर्तगाली बीजापुर के आदिलशाही दरबार में इसे नई दुनिया (अर्ज-ई-जहीज) से लाए थे। आदिलशाह ने बादशाह अकबर को हीरे-जवाहरात से जड़ा हुक्का भेंट किया था और तब से भारत में इस जानलेवा प्रथा की शुरुआत हुई थी। अकबर राजा के समय (लगभग 400 साल) से लोग इसे पीते आ रहे हैं।

ताजा सर्वेक्षण के अनुसार 60 प्रतिशत छात्र और 40 प्रतिशत् छात्राएं प्रतिदिन पांच से अधिक सिगरेट पीते हैं। हलांकि ये आंकड़े दिल्ली, मुम्बई और बंगलौर जैसे महानगरों के हैं, छोटे शहरों में भी यह लत महामारी की तरह फैलने लगी है। अब किशोरों के साथ किशोरियां भी सिगरेट पीने लगी हैं। इस मामले में वे भी लड़कों से पीछे नहीं रहना चाहतीं। आज की युवतियों व किशोरियों का यह तर्क है कि हम किसी भी मामले में पुरुषों से पीछे नहीं रहना चाहतीं। हमारे अन्दर भी वही उत्साह, वही चाहत और वही भावना है जो लड़कों में है।

धूम्रपान की अवस्थाएं

शोधकर्ताओं ने धूम्रपान की तीन अवस्थाएं बताई हैं–

पहली अवस्था– इसके अन्तर्गत सिगरेट या बीड़ी-हुक्का शौक, फैशन या दिखावे के लिए पी जाती है। देखा-देखी पीने की यह लत 5-6 साल की समयावधि में छोड़ी जा सकती है।

दूसरी अवस्था या गिरफ्त की अवस्था–इसके अन्तर्गत आदमी धूम्रपान की आदत का गुलाम हो जाता है। उसे अपने पर कोई वश नहीं रहता क्योंकि तम्बाकू का नशा मुख्य रूप से मनुष्य के केन्द्रीय स्नायुतन्त्र को प्रभावित करता है। इसमें मनुष्य का सिर चकराने लगता है और

असहनीय सिरदर्द भी कई बार शुरू हो जाता है।
तीसरी अवस्था— इस अवस्था के अन्तर्गत धूम्रपान की आदत के गुलाम आदमी को छाती में दर्द की शिकायत के साथ भयंकर सिरदर्द शुरू हो जाता है। चक्कर भी आने लगते हैं। कई बार अस्पताल में भर्ती होने की स्थिति आ जाती है। धूम्रपान के कारण धुंआ छाती और फेफड़ों में परत के रूप में जमा हो जाता है, जिसके कारण आदमी को और ज्यादा धूम्रपान करने को मजबूर होना पड़ता है। दमा या तपेदिक की बीमारी की शुरुआत भी यहीं से होती है।

धूम्रपान से होने वाले शारीरिक रोग

धूम्रपान शरीर पर कई प्रकार से बुरा प्रभाव डालता है तम्बाकू के धुंए से कई प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है।

हृदय रोग

धूम्रपान के विषैले पदार्थों के कारण विद्युत आवेग जो कि हृदय गति को सामान्य रूप से प्रेरित करते हैं, उनमें समानता आ जाती है। इसके कारण उत्तेजक व अप्रभावी संकुचन विकसित होते हैं, जिसे वेन्ट्रीक्यूलर फाइबरीलेशन कहते हैं। ये संकुचन प्रभावी नहीं होते, इसलिए ये खून को शरीर के विभिन्न अंगों तक पम्प करने में असमर्थ होते हैं। इन अप्रभावी संकुचनों के कारण हृदयगति रुक जाती है। यह पाया गया है कि 45 साल से कम उम्र के लोगों में जिनकी मृत्यु हृदयगति रुकने के कारण हुई है, उनमें 80 प्रतिशत् संख्या धूम्रपान करने वालों की है। धूम्रपान करने वालों में धूम्रपान न करने वालों की अपेक्षा हृदय रोग होने की दुगुनी सम्भावना होती है।

गर्भावस्था में धूम्रपान का कुप्रभाव

धूम्रपान के कारण गर्भवती महिलाओं में गर्भपात, असमय जन्म व गर्भ में ही शिशु की मृत्यु की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है। तम्बाकू के धुंए में व्याप्त निकोटीन पोषण को फिल्टर करके गर्भ में शिशु तक पहुंचने की क्षमता को नष्ट कर देता है। निकोटीन रक्त धमनियों पर कोलस्ट्रोल जमा देता है जिससे गर्भ में शिशु तक मां का रक्त सही रूप से पम्प होकर नहीं पहुच पाता। इन्ही कारणों से गर्भ में शिशु को सही पोषण नहीं मिल पाता और यह शिशु के स्वास्थ्य और जीवन के लिए घातक सिद्ध होता है।

अधेड़ उम्र में धूम्रपान के प्रभाव

60 साल की उम्र के बाद धूम्रपान करने से ब्रोनकाइटिस, फेफड़ों का कैन्सर, हृदय रोग व मधुमेह जैसे रोगों की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है।

बीड़ी सिगरेट का धुंआ जानलेवा है

सिगरेट-बीड़ी के धुंए में निकोटीन, कार्बन मोनोक्साइड आदि विषैले तत्व होते हैं, जो शरीर को प्राप्त होने वाली आक्सीजन की मात्रा को कम करते हैं। आक्सीजन की कमी होने से हृदय पर विशेष दबाव पड़ता है जिससे दिल का दौरा भी पड़ सकता है। आक्सीजन की पर्याप्त मात्रा न मिलने से व्यक्ति को सांस लेने में परेशानी होती है। हृदय को आक्सीजन पर्याप्त मात्रा में पहुंचे, इसके लिए उसे तेज-तेज सांसें लेनी पड़ती हैं। यही दमे या श्वास की बीमारी कहलाती है।

धूम्रपान करने से व्यक्ति के मुंह से दुर्गन्ध आने लगती है। होंठ काले पड़ जाते हैं। दांतों का रंग पीला पड़ जाता है। धूम्रपान से फेफड़े, मुंह, जीभ, गले का कैंसर हो सकता है। महिलाओं में स्तन कैंसर ज्यादातर इसी कारण होता है।

तम्बाकू का धुंआ आज असमय मृत्यु, विकलांगता व क्षय बीमारी का मुख्य कारण है। हैरानी की बात यह है कि धूम्रपान एक स्वयं प्रोत्साहित और सामाजिक स्तर पर मान्यता प्राप्त नशा है। तम्बाकू की खपत 1971 से 1999 के बीच 45 प्रतिशत् की दर से बढ़ गई है व धूम्रपान एक व्यापक रोग बनता जा रहा है जो 2.5 प्रतिशत् सालाना की दर से बढ़ रहा है।

तम्बाकू के धुंए में व्याप्त विषैले पदार्थ व उनका शरीर पर कुप्रभाव

तम्बाकू के धुंए में मुख्य रूप से निम्नलिखित विषैले पदार्थ

पाए जाते हैं–

- उत्तेजक पदार्थ
- कैंसर रोग विकसित करने वाले तत्व यानी कार्सीनोजेन्स
- कार्बन मोनोक्साइड इत्यादि गैसें
- निकोटीन

उत्तेजक तत्वों का मुख, नाक, गला, श्वास नली, ग्रसनी व भोजन नलिका पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इन उत्तेजक तत्वों में हाइड्रोसाइनिक एसिड, फोरमेल्डिहाइड, एसीटेल्डिहाइड, अमोनिया व नाइट्रो-आक्साइड्स मुख्य हैं।

कारसीनोजेनिक तत्व मुख्यतः ट्यूमर को उभारते हैं जो विकसित होकर कैंसर में परिवर्तित हो जाते हैं। कार्बन मोनोक्साइड एक अत्यन्त विषैली गैस है जो खून में आक्सीजन का ठीक प्रकार से परिवहन नहीं होने देती। इसके कारण खून में कोलस्ट्रोल की मात्रा बढ़ जाती है जो हृदय धमनी की परिक्रमा में बाधक होती है व असमय मृत्यु का कारण बन सकती है।

निकोटीन एक अत्यन्त विषैला पदार्थ है जो शरीर के लिए बहुत हानिकारक है। निकोटीन को फेफड़ों से दिमाग तक पहुंचने में केवल 7 सैकेण्ड लगते हैं। निकोटीन मांसपेशियों को शिथिल कर देता है जिससे धूम्रपान करने वालों को आराम का अहसास होता है और धूम्रपान आसानी से न छोड़ पाने का मुख्य कारण है।

किशोरों में धूम्रपान शुरुआत के कारण

सिगरेट कोई चाय की तरह हल्का नशा नहीं है। यह एक हानिकारक नशा है। तम्बाकू से प्राप्त होने वाला निकोटीन हेरोइन या कोकीन के वर्ग का खतरनाक नशा है। किशोरावस्था में इसकी शुरुआत निम्न प्रकार से हो सकती है–

- कच्ची उम्र की मानसिकता होती है कि समाज में उन्हें भी बड़े लोगों जितना समझदार और जिम्मेदार समझा जाए। सिगरेट पीना उम्र में बड़े लोगों की आदत मानी जाती है, इसीलिए इस आदत को अपनाकर अपने को समझदार और प्रौढ़ होने का सबूत देने की कोशिश करते हैं।
- कुछ किशोर-किशोरी प्रयोगवादी हो जाते हैं। सिगरेट पीने की आदत भी उन्हें इसी प्रयोगवादी प्रवृति के कारण पड़ जाती है।
- यार-दोस्तों के साथ शौकिया पीने वालों को भी इसकी लत पड़ते देर नहीं लगती।
- यार-दोस्तों के साथ खेल-खेल में 'एक कश ले ले यार' इससे कुछ नहीं होता, यह आजमाया जाना भी सिगरेट की शुरुआत का काफी जाना माना तरीका है। धीरे-धीरे वे इसके आदी हो जाते हैं।
- कभी अपनी दोस्ती का सबूत देने के लिए या फिर सिगरेट न पीने की आदत पर दोस्तों की ओर से 'बेबी' पुकारे जाने पर सिगरेट की शुरुआत होती है।
- अध्ययनों से पता चलता है कि नए कॉलेज या दोस्तों के दबाव में भी सिगरेट पीने की शुरुआत सबसे ज्यादा होती है।
- किशोरावस्था में पनपने वाले इस दुर्गुण का मुख्य कारण विज्ञापनों को माना जा सकता है। संचार माध्यम में सिगरेट के प्रचार को इस कदर महिमा मण्डित करके दिखाया जाता है जैसे यह नशीली चीज न होकर अलादीन का जादुई चिराग हो। एक कस लगाइए हर असम्भव कार्य को सम्भव करते जाइए। मसलन आप सिगरेट पीकर शेर से लड़ सकते हैं। हवाई जहाज़ से कूदकर किसी की जान बचा सकते हैं, आपको खरोंच तक नहीं आएगी। किशोरियां और नवयौवनाएं आपकी बाहों में आने के लिए बेताब नजर आएंगी आदि-आदि।
- आज के महात्वाकांक्षी किशोर जीवन में कोई लक्ष्य बनाकर उसे पाना चाहते हैं किन्तु जब असफलता उनके हाथ लगती है तो वे निराश होकर नशे के आगोश में समा जाते हैं।
- कई बार ऐसा भी देखा गया है कि अत्यधिक मेधावी छात्रों से ईर्ष्या करने वाले सहपाठी उनका कैरियर चौपट करने या उनसे अपनी हार या अपमान का बदला लेने के उद्देश्य से प्यार से उसे नशे का आदी बना देते हैं जिससे उक्त छात्र का जीवन बर्बाद

हो जाता है।

- अनेक परिवारों में माता-पिता में खींचातानी या दोनों लोगों का नौकरी में व्यस्त रहना, मित्रों या पार्टियों में मौजमस्ती करना, बच्चों की तरफ ध्यान न देना, अकेलापन भी बच्चों को सिगरेट पीने की ओर प्रेरित करता है।
- परिवार में प्रचलित धूम्रपान भी बच्चों को नशे की ओर प्रेरित करता है।

कई शोध चिकित्सकों का मत है कि एक सिगरेट पीने से आयु 15 मिनट घट जाती है। औसतन प्रतिदिन 20-25 सिगरेट पीने वाले की आयु लगभग 8 वर्ष कम हो जाती है। यदि कोई व्यक्ति अपने परिवार के साथ बैठकर 20 सिगरेट पीता है तो उसके बच्चों में गले और फेफड़ों की बीमारियों की सम्भावना 25 से 35 प्रतिशत् बढ़ जाती है। धूम्रपान न करने वाले व्यक्ति का जीवन साथी यदि धूम्रपान करता है तो धूम्रपान न करने वाले को भी फेफड़े का कैंसर होने की सम्भावना 30 प्रतिशत् बढ जाती है। जो धूम्रपान नहीं करते, उनको आंख, नाक, गले में परेशानी हो जाती है।

भारत में बनने वाली सिगरेट में औसतन 1.0 से 1.4 मिलीग्राम और बीड़ी में 1.76 से 3.0 मिलीग्राम, हुक्के में 0.75 से 1.02 मिलीग्राम तक निकोटीन तथा टार नामक जहरीला पदार्थ होता है। निकोटीन इतना जहरीला रसायन होता है कि एक साथ 60-70 मिलीग्राम मात्रा ही मनुष्य की जीवनलीला समाप्त कर सकती है। मात्र 40-60 भारतीय सिगरेट पीने से निकोटीन की इतनी मात्रा शरीर में पहुंच जाती है। चूंकि यह मात्रा शरीर मे धीरे-धीरे पहुंचती है तो उसी अनुपात में घातक प्रभाव धीरे-धीरे होता है।

वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन के अनुसार विश्व में 3.5 मिलियन से भी ज्यादा मृत्यु केवल तम्बाकू के हानिकारक प्रभाव के कारण हो रही हैं। आंकड़ों के अनुसार यह दर 2030 तक 10 मिलियन तक पहुंच जाएगी। इसके 70 फीसदी शिकार विकासशील देश हो रहे हैं।

सामाजिक स्तर पर उठाए जाने वाले कदम

सामाजिक स्तर पर जो कदम हमें उठाने चाहिए, वे हैं—

- **धूम्रपान त्यागने के लिए प्रेरित करना**— धूम्रपान करने वालों को धूम्रपान के कुप्रभावों को बताकर और इस बुरी आदत के कारण उनके परिवार को हो रही हानि के बारे में समझाकर उन्हें धूम्रपान त्यागने के लिए प्रेरित करना चाहिए।
- **नशे की आदत धीरे-धीरे छुड़ाएं**— किसी भी नशे की लत को एकदम त्याग देना बहुत कठिन है। इसके लिए किशोरों को धीरे-धीरे सिगरेट आदि छुड़ाने के लिए प्रेरित करना चाहिए।
- **सामुदायिक चेष्टा**— इस नशे की आदत को दूर करने के लिए पूरे समुदाय को एक साथ मिलकर इन नशों में फंसे किशोरों की मदद करनी होगी। यह काम धूम्रपान के बुरे प्रभावों के बारे में प्रचार करके किया जा सकता है।

राष्ट्रीय तथा विद्यालय स्तर पर उठाए जाने वाले कदम

राष्ट्रीय स्तर पर जो कदम उठाए जाने चाहिएं वे इस प्रकार हैं—

- **राष्ट्रीय चेतना**— राष्ट्रीय स्तर पर हर देश की सरकार को धूम्रपान पर नियन्त्रण पाने की राष्ट्रीय नीति बनानी होगी।
- **स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम**— लोगों को धूम्रपान के कुप्रभावों के प्रति सजग करने के लिए बड़े पैमाने पर धूम्रपान से स्वास्थ्य को जो हानि होती है, उसका प्रचार-प्रसार करना होगा।
- **धूम्रपान निषेध अस्पताल**— लोगों को धूम्रपान की आदत छुड़ाने के लिए इस प्रकार के अस्पताल, सरकारी स्तर पर खोलकर धूम्रपान की आदत दूर करने का प्रयास किया जा सकता है।
- **अनुसंधान**— धूम्रपान रोकने के लिए धूम्रपान के कुप्रभावों पर लगातार खोज होनी चाहिए और इस जानलेवा नशे को वैज्ञानिक तरीकों से दूर करने के लिए अनुसंधान जारी रहना चाहिए।

- **निर्देशन व परामर्श केन्द्र की स्थापना**—लगभग 70 प्रतिशत किशोर-किशोरियां दिल ही दिल में धूम्रपान छोड़ना चाहते हैं, लेकिन छोड़ नहीं पाते। क्योंकि या तो उन्हें इस निर्णय के समय सहारा देने वाले आसपास नहीं होते या फिर सही मार्गदर्शन नहीं मिलता। इसलिए आवश्यक है कि विद्यालय स्तर पर निर्देशन व परामर्श केन्द्र की स्थापना की जाए, जिससे उन्हें सही दिशा निर्देशन प्राप्त हो सके।
- **धूम्रपान निषेध नियम**—विद्यालय स्तर पर धूम्रपान निषेध नियम लागू किया जाए और इस नियम का कड़ाई से पालन किया जाए।
- **स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम**— विद्यालय स्तर पर भी समय-समय पर स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिएं।
- धूम्रपान निषेध पर संगोष्ठी, कार्यशाला आदि का आयोजन किया जाना चाहिए।

किशोर व किशोरियों के लिए सुझाव

- सिगरेट के स्वाद जैसी तम्बाकू रहित चुइंगम आती है इसे खासतौर पर सिगरेट छोड़ने वालों की मदद के लिए बनाया गया है। इसके अलावा तम्बाकू की गंध वाले इन्हेलर, पैकेज आदि भी सिगरेट छोड़ने में सहायता करते हैं। ये सभी स्मोकिंग रिप्लेसमेंट तकनीक का हिस्सा हैं।
- अपने से यह वादा करें कि हमें सिगरेट छोड़नी है चाहे कुछ भी हो जाए और जब नियत समय पर सिगरेट पीने का मन करे और मन सिगरेट की ओर खिंचने लगे तो ऐसे में सन्तरे का रस, चाय या ऐसी ही कोई चीज खाने-पीने में अपना मन लगाएं।
- कुछ कुरकुरी या चूसने वाली चीजें अपने पास रखनी चाहिएं।
- जब मन बहुत परेशान करे तो याद करें कि सिगरेट पीना क्यों छोड़ना चाहते हैं।
- आपके पास धूम्रपान से सम्बन्धित जितनी भी चीजें हों, उन्हें फेंक दें। थोड़े दिन उस जगह या ग्रुप में न जाएं जहां आपको सिगरेट पीने को मजबूर होना पड़ सकता है या फिर तलब लगे।
- सिगरेट छोड़ने के कुछ दिन में ही आपको नींद नहीं आना, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना, निराशा, थकान आदि का अनुभव कुछ अवधि तक ही होगा लेकिन फिर सब ठीक हो जाएगा। इसके लिए मानसिक रूप से तैयार रहें। व्यायाम करना शुरू कर दें।

जीवन यथार्थ है, इसमें आने वाली स्थितियां, कठिनाइयां, सफलताएं, असफलताएं सब यथार्थ हैं। इनसे चाहकर भी मुंह नहीं मोड़ा जा सकता। अतः किसी भी गम को नशे में गलत नहीं किया जा सकता, न ही किसी फिक्र को धुएं में उड़ाया जा सकता। हर हाल में इसी के बीच, इसी से संघर्ष करते हुए हमें जीना होगा, इस शाश्वत सत्य को हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।

स्मोकिंग फैक्टस

- एक सर्वे के अनुसार विश्व के 14 फीसदी किशोर सिगरेट पीते हैं। 13 से 15 साल के किशोरों को सिगरेट पीने की आदत है। विश्व भर में किए गए एक सर्वे से यह भी पता चला है कि विकासशील देशों में सिगरेट पीने वाले बच्चे सबसे ज्यादा हैं।
- अन्तर्राष्ट्रीय तम्बाकू विरोधी सम्मेलन में एक अध्ययन के दौरान यह भी बताया गया है कि अब सिगरेट पीने वाली लड़कियों की संख्या भी बढ़ रही है। यूरोप और अमेरिका में भी यह संख्या लगातार बढ़ रही है।
- दिल्ली में ग्लोबल यूथ टोबैको सर्वे के तहत पाया गया कि 8.3 फीसदी छात्र ऐसे थे जो सिगरेट पीने के इच्छुक थे।
- 22 फीसदी लड़के ऐसा सोचते हैं कि सिगरेट पीने वाले या तम्बाकू खाने वाले लड़कों के दोस्त ज्यादा होते हैं।
- 68 फीसदी छात्र मानते हैं कि सिगरेट पीना निषेध कर देना चाहिए। ❑❑

शिवलोक महाविद्यालय
मेहरबान सिंह पुरवा
कानपुर, उत्तर प्रदेश

जीवविज्ञान विषय की शैक्षिक उपलब्धियां

❑ बसन्त बहादुर सिंह
❑ संगीता सिंह

व्यक्ति वातावरण से अन्तःक्रिया करके अपने व्यवहारों को इस प्रकार परिवर्तित करता है कि वातावरण के साथ उसका उचित सामंजस्य हो सके। व्यक्ति के व्यवहार में आए इस प्रकार के परिवर्तन को अधिगम कहते हैं। कुछ वातावरण इस प्रकार के होते हैं कि उनमें व्यक्ति को सीखने में सुविधा होती है जबकि इसके विपरीत अन्य प्रकार के वातावरण में उसे असुविधा होती है। यदि सीखने के लिए व्यक्ति को उचित वातावरण प्रदान किया जाए तो अधिगम में मात्रात्मक व गुणात्मक वृद्धि हो सकती है। "शिक्षण एक ऐसी ही प्रक्रिया है, जिसमें अधिगमकर्ता के सीखने की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाना ही शिक्षक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। वास्तव में उचित वातावरण का निर्माण करके अधिगमकर्ता के सामने आने वाली कठिनाइयों को दूर करके अधिगम की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाना ही शिक्षण है।"

यहां पर वातावरण के सृजन से तात्पर्य विभिन्न उद्दीपनों को संगठित करके इस प्रकार प्रस्तुत करने से है, जिसमें अधिगमकर्ता को पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता मिलती है। विभिन्न प्रकार के शिक्षण वातावरण को बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है। एक प्रकार का शिक्षण वातावरण कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति में छात्रों के लिए सहायक होता है। अतः शिक्षण वातावरण बनाने की एक ही विधि से छात्रों को सभी प्रकार के अधिगम के लिए दक्ष नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में एक ही शिक्षण विधि का प्रयोग करके शिक्षक कुछ निश्चित उद्देश्यों को ही प्राप्त कर सकता है।

शिक्षा परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण साधन है, जिसके द्वारा बालक और समाज दोनों की आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है व बालक के तीनों पक्षों (ज्ञानात्मक, भावात्मक व रचनात्मक) पर विचार किया जाता है। मित्रा (1972) का यह कथन ठीक ही प्रतीत होता है कि "शिक्षा के उद्देश्य प्रक्रिया और मूल्यांकन का संबंध प्रमुख रूप से अध्ययन-अध्यापन से होता है। अतः शिक्षा की विस्तृत समस्याओं का निराकरण तब तक नहीं हो सकता जब तक कि हम अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया से संबंधित समस्याओं का निराकरण न कर लें। अर्थात् शिक्षा में सुधार का अर्थ होता है– अध्ययन की परिस्थितियों में सुधार।" अध्ययन-अध्यापन परिस्थितियों में सुधार करने का एक आशय है कि हम अपने शिक्षक, शिक्षण विधि, पाठ्यचर्या और मूल्यांकन विधियों में सुधार करें। अध्यापन में सुधार करने हेतु विभिन्न शिक्षाविदों तथा मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षण सिद्धांतों व शिक्षण विधियों का निर्धारण किया जो सीखने-सिखाने में मदद् करता है।

उद्देश्य

प्रयोगात्मक व परम्परागत विधि द्वारा अध्ययन करने पर छात्रों के उत्तर परीक्षा के उपलब्ध अंकों को ज्ञात करना

व दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना

प्रयोगात्मक समूह और परम्परागत (नियंत्रित) समूह को उपचार दिए जाने पर छात्रों के उत्तर परीक्षण के उपलब्धि अंकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं आएगा।

प्रविधिक शब्द

संकल्पना प्राप्ति प्रतिमान– "यह वह प्रक्रिया है जो बालकों को एक अवसर देती है, जिससे वह अपनी विचार प्रक्रिया का विश्लेषण कर सके। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह विचार करने की प्रभावशाली विधियों को विकसित करने में मदद् करता है।"

सकारात्मक उदाहरण– सकारात्मक उदाहरण वे होते हैं जो संकल्पना से संबंधित होते हैं।

नकारात्मक उदाहरण– ये वे उदाहरण हैं जो संकल्पना से संबंधित नहीं होते।

प्रयोगात्मक समूह– यह वह समूह है जिसे संकल्पना प्राप्ति प्रतिमान द्वारा पढ़ाया जाएगा।

नियंत्रित समूह – जिन्हें परम्परागत विधि से पढ़ाया गया है, यह व्याख्यान विधि है।

उपलब्धि– उपलब्धि परीक्षण वह अभिकल्प है जो विद्यार्थियों द्वारा ग्रहण किए गए ज्ञान, कुशलता, क्षमता का ज्ञापन करता है।

लघुकृत रूप –

सकारात्क **'स.'**, नकारात्मक **'न.'**, उदाहरण उ.,
सकारात्मक-नकारात्मक उदाहरण **स. न. उ.**

शोध अभिकल्प

वर्तमान अध्ययन में प्रयोगात्मक और नियंत्रित समूह पूर्व परीक्षण, पश्च परीक्षण, समानान्तर समूह अभिकल्प का प्रयोग किया गया।

न्यादर्श

अध्ययन की जनसंख्या 11वीं कक्षा में जीवविज्ञान पढ़ने वाले शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय कढ़ोद कलां, धार के छात्र थे। चयनित न्यादर्श सौद्देश्यात्मक और जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाला था। शोधकर्ता ने सौद्देश्यात्मक न्यादर्श का चयन अपने अध्यापन के प्रयोगात्मक स्वभाव, आवश्यकता और सीमाओं को देखकर किया था। शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय कढ़ोद कलां, धार, के 120 विद्यार्थियों में से 30 विद्यार्थियों का चयन किया गया और उन्हें समान रूप से तीन समूह में विभाजित किया गया। जिन विद्यार्थियों को लिया गया वे औसत बुद्धि और औसत सामाजिक अवस्था के थे।

उपकरण

उपलब्धि परीक्षण (जीवविज्ञान)– यह उपलब्धि परीक्षण शोधार्थी द्वारा 11वीं कक्षा जीवविज्ञान के लिए बनाया गया। इस उपकरण का आधार जीवविज्ञान के अन्तर्गत पांच इकाइयां हैं। इसकी विश्वसनीयता 0.71 पाई गई। इस आधार पर कहा जा सकता है कि यह वैध है। इस परीक्षण की वैधता इसलिए भी संदेह से परे है क्योंकि इसका आधार ही जीवविज्ञान के पादप व जन्तु समूह है। परीक्षण का निर्माण करने के पश्चात् इसकी वैधता की जांच विषय विशेषज्ञों, शिक्षाविदों द्वारा कराई गई तथा उनके द्वारा दिए गए निर्देशों व सुझावों के अनुसार इस परीक्षण में सुधार किया गया।

प्रदत्तों का संकलन

न्यादर्श चयन के बाद तीनों समूहों की समान अवधि में एक ही व्यक्ति (शोधार्थी) द्वारा दोनों प्रकार के उपचार प्रदान किए गए। सकारात्मक-नकारात्मक उदाहरण तथा सकारात्मक उदाहरण के विषय में जानकारी दी गई। तीसरे समूह की परम्परागत शिक्षण विधि के बारे में बताया गया। यह कार्य इसलिए किया गया क्योंकि वहां पर केवल परम्परागत विधि का ही उपयोग होता था। इन तीनों समूहों को सामान्य जानकारी देने के बाद पढ़ाने का कार्य किया गया। दोनों प्रयोगात्मक समूहों

को संकल्पना प्राप्ति प्रतिमान से पांच संकल्पनाएं दी गईं, उन्हीं पांच संकल्पनाओं की जानकारी तीसरे परम्परागत समूह को भी दी गई। पांचों संकल्पनाओं को शुरू करने से पहले पूर्व परीक्षण लिया गया और पांच संकल्पनाओं की समाप्ति के पश्चात् पश्च परीक्षण लिया गया। यह कार्य दोनों प्रयोगात्मक व नियंत्रित समूह पर समान्तर रूप से किया गया। इस शोध कार्य हेतु प्रत्येक विद्यार्थी को प्रश्न-पत्र दिए गए जो वस्तुनिष्ठ प्रकार के थे। विद्यार्थियों से उन्हीं पर उत्तर लिखाया गया, यही उत्तर पत्र प्रदत्तों के संकलन हेतु उपयोग में लिए गए।

परिणाम व चर्चा

इस शोध की परिकल्पना की सत्यता के परीक्षण हेतु प्रदत्तों हेतु का विश्लेषण, एनोवा (प्रसरण विश्लेषण) द्वारा किया गया। प्राप्त परिणाम नीचे तालिका में दिए गए हैं।

तालिका से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि एफ 22.719 (डिग्री ऑफ फ्रीडम 2/27) जो कि तीनों समूहों के लिए (3.35).05 और .01 पर सार्थक है।

अतः यह परिणाम बताता है कि समूह एक, दो, तीन, तीनों ने छात्रों की उपलब्धि पर विभिन्न परिणाम डाले हैं। चूंकि एफ (22.719) का मूल्य सार्थक आया है, अतः इनका पुनः परीक्षण आवश्यक होता है, इस हेतु 'टी' परीक्षण का उपयोग किया गया। यहां पर 'एनोवा' और 'टी' का प्रयोग उत्तर अंकों के आधार पर किया गया।

तालिका से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि "टी" मूल्यों (डी एफ 8) जिसका मान .05 (2.10) तथा .01 (9.88) स्तर पर सार्थक है और इनके परिणाम उनके उपलब्धि स्तर को इंगित कर रहे हैं। अतः इसके परिणामों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रयोगात्मक समूह

तीनों समूहों 2 प्रयोगात्मक, (पराम्परागत) के उत्तर परीक्षण के प्राप्तांकों के प्रसरण विश्लेषण (एनोवा) का सारांश

विचरण का स्रोत	*स्वतंत्रता के अंश*	*वर्गों का योग*	*मध्यमान वर्ग*	*एफ मान*	*सार्थक स्तर*
समूहों के	2	583.800	291.900	22.719	05
समूहों के	27	346.899	12.848		.01
योग	29	930.695	304.748		

'टी' परीक्षण का विश्लेषण उपलब्धि के आधार पर तीनों समूहों के परिणामों का सारांश

क्र. सं.	*समूह*	*संख्या*	*मध्यमान*	*प्रामाणिक विचलन*	*'टी' मूल्य*	*सार्थक स्तर*
1.	प्रयोगात्मक समूह I	10	21.2	2.135	2.829	
2.	प्रयोगात्मक समूह II	10	10.1	4.968	10.245	.05
3.	नियंत्रित समूह III	10	10.1	2.332	3.115	.01

व नियंत्रित परम्परागत समूह को उपचार दिए जाने पर उनके उपलब्धि अंकों में वृद्धि हुई। इस आधार पर परकल्पना अस्वीकृत की गई।

चर्चा

जैसा कि उपरोक्त तथ्यों को आधार बताते हुए यह बताया गया कि समूह एक (स.न.उ.) विद्यार्थियों के लिए सबसे अधिक लाभकारी सिद्ध हुआ। इसके द्वारा छात्रों की उपलब्धियों में वृद्धि हुई, जबकि परम्परागत विधि से पढ़ाए जाने पर विद्यार्थियों की उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं आया। इन परिणामों के आधार पर संभवतः यह निश्चित शैक्षिक लक्ष्यों के प्रयोग का परिणाम हो सकता है जिसके कारण शिक्षक अपने व्यवहार को नियंत्रित करते हैं।

दूसरा कारण संकल्पना प्राप्ति प्रतिमान से अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया में छात्रों का सहयोग अधिक हुआ होगा। सम्भवतः इससे भी छात्र प्रेरित हुए हों, इसलिए इनकी उपलब्धि में वृद्धि हुई।

चूंकि संकल्पना प्राप्ति प्रतिमान की प्रक्रिया बाल केन्द्रित है और यह प्रक्रिया केन्द्रित भी है, इस कारण छात्रों को स्वयं अभिव्यक्ति करने का अवसर अधिक मिलता है। इस कारण से भी उपलब्धि में वृद्धि हो सकती है। दोनों ही व्यूह रचनाओं सं.न.उ. तथा स.उ. द्वारा सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए। अतः ऐसा कहा जा सकता है कि इन दोनों व्यूह रचनाओं का संगठन व क्रियान्वीकरण सफल रहा।

शैक्षिक उपयोगिता

- प्रस्तुत अध्ययन में संकल्पना प्राप्ति प्रतिमान छात्रों की उपलब्धि बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ, जिसके द्वारा जीवविज्ञान विषय में उपलब्धि को बढ़ाया जा सकता है। जीवविज्ञान में शिक्षक इस प्रतिमान का उपयोग कर विद्यार्थी में उपलब्धि बढ़ा सकते हैं। इनके द्वारा विद्यालय समय से पूर्व छोड़ने की समस्या का निराकरण किया जा सकता है क्योंकि संकल्पना प्राप्ति अन्तर्निहित विशेषताएं, छात्रों की भागीदारी व छात्रों के विचारों को प्रोत्साहित करती हैं।
- संकल्पना प्राप्ति प्रतिमान के ग्रहण प्रतिमान का उपयोग भारतीय कक्षाओं में आसानीपूर्वक किया जा सकता है जो कि लाभप्रद है और इसके लिए विशेष प्रकार की तकनीकी सुविधाओं की आवश्यकता नहीं होती। शिक्षक शिक्षण सामग्री का निर्माण कर इस प्रतिमान का उपयोग कर सकते हैं। अतः इसकी उपयोगिता भी संदेहों से परे है।
- संकल्पना प्राप्ति प्रतिमान एक ऐसा प्रतिमान है जो छात्रों की विचार प्रक्रिया में वृद्धि करता है। अतः शिक्षकों में इसका ज्ञान व समझ दोनों ही होने आवश्यक हैं। शिक्षकों को दोनों ही प्रकार के उदाहरणों का चयन व निर्माण का ज्ञान देना आवश्यक है। अतः शिक्षकों को हर पद क्रमांक पर प्रशिक्षण देने की आवश्यकता होगी। ❑❑

(1) शिक्षा संकाय
आ.वी.एस. कॉलेज
आगरा, उत्तर प्रदेश
(2) शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
कढ़ोद कलां, धार, मध्य प्रदेश

भाषायी कौशलों का शिक्षण में उपयोग

❑ भगवती प्रसाद डिमरी

भाषायी कौशलों में सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना आता है। जिसे इन चारों कौशलों का ज्ञान है उसे ही भाषा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त है– ऐसा कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए राम अंग्रेजी भाषा को सुनकर व समझकर बोल भी लेता है लेकिन उसे वह न पढ़ पाता है और न ही लिख पाता है। तो हम उसके भाषा कौशल को अधूरा ही मानेंगे। बच्चे की शिक्षा में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। विद्यालय में पढ़ाए जाने वाले सभी विषयों की जानकारी वह भाषा के माध्यम से ही प्राप्त करता है। इस प्रकार भाषा के बुनियादी कौशल उसकी सम्पूर्ण शिक्षा को प्रभावित करते हैं। भाषायी कौशलों में सर्वप्रथम सुनना आता है, उसके बाद बोलना, बोलने के बाद पढ़ना तथा अंतिम लिखना है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे समाज पर आश्रित रहना पड़ता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विचारों के आदान-प्रदान की आवश्यकता होती है और विचारों का अदान-प्रदान भाषा के बिना संभव नहीं। भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है, भाषा के बिना दैनिक जीवन के कार्य भी सम्पन्न नहीं हो सकते। अतः भाषा का मानव जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

(दो व्यक्ति बातचीत करते हुए)

(ग्राहक व दुकानदार की बातचीत)

उद्देश्य–

- ❑ ज्ञान तथा भाषायी कौशलों में अंतर स्पष्ट करना।
- ❑ भाषायी कौशलों की जानकारी प्राप्त करना।
- ❑ भाषायी कौशलों का महत्व बता सकना।
- ❑ भाषायी कौशलों का ज्ञानार्जन में योगदान बता सकना।

जो बात हमारी बुद्धि में बैठ जाती है उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञान व्यक्ति का आंतरिक गुण है। इसे देखा नहीं जा सकता। किसी भी व्यक्ति के ज्ञान की जानकारी उसके व्यवहार से होती है। व्यक्ति का व्यवहार दिखाई देता है तथा उसका अनुभव भी किया जाता है। अतः व्यवहार व्यक्ति का बाह्य गुण है जिससे उसके आंतरिक गुण की जानकारी प्राप्त होती है। किसी भी व्यक्ति के भाषा ज्ञान की जानकारी उसके भाषा प्रयोग से होती है, क्योंकि भाषा के व्यवहार/प्रयोग को हम सुनते हैं तथा अनुभव करते हैं। व्यक्ति का व्यवहार, संस्कार, शिक्षा तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि का आधार भी भाषा प्रयोग ही है।

भाषा व्यवहार के आधार पर भाषा ज्ञान का पता चलता है

भाषायी कौशलों में सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना आता है। जिसे इन चारों कौशलों का ज्ञान है उसे ही भाषा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त है– ऐसा कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए राम अंग्रेजी भाषा को सुनकर व समझकर बोल भी लेता है लेकिन उसे वह न पढ़ पाता है और न

ही लिख पाता है, तो हम उसके भाषा कौशल को अधूरा ही मानेंगे। बच्चे की शिक्षा में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। विद्यालय में पढ़ाए जाने वाले सभी विषयों की जानकारी वह भाषा के माध्यम से ही प्राप्त करता है। इस प्रकार भाषा के बुनियादी कौशल उसकी सम्पूर्ण शिक्षा को प्रभावित करते हैं। भाषायी कौशलों में सर्वप्रथम सुनना आता है, उसके बाद बोलना, बोलने के बाद पढ़ना तथा अंतिम लिखना है।
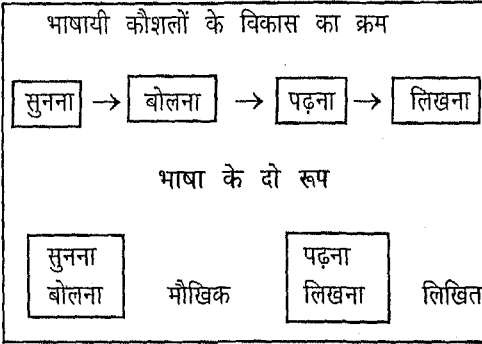
भाषायी कौशलों के सम्बन्ध में बताया गया है कि सुनना, बोलना, पढ़ना व लिखना भाषा के चार बुनियादी कौशल हैं। सुनना भाषा का प्रथम व अहं कौशल है।

सुनना

भाषा का प्रथम कौशल सुनना है, जिसे 'श्रवण' भी कहा जाता है। श्रवण केवल ध्वनियों को मात्र सुनना नहीं अपितु–

- ध्यानपूर्वक/ एकाग्रता के साथ सुनना,
- सुनी हुई बात को समझना,
- समझते हुए चिंतन-मनन करना, व
- सुनी हुई बात को व्यवहार में लाना है।

अध्यापक छात्र को निर्देश देता है– 'मेरे पास आओ।' सर्वप्रथम वह अध्यापक की बात को ध्यानपूर्वक सुनता है, उसे समझता है तथा समझकर चिंतन-मनन करता है कि क्यों मुझे बुलाया जा रहा है? क्या मुझसे गलती हो गई, या अध्यापक को मुझसे कोई काम है आदि। उसके बाद अपने स्थान से उठकर वह अध्यापक के पास जाता है। इस प्रकार अध्यापक की कही हुई बात को वह व्यवहार में लाता है।

बच्चा विद्यालय में आने से पहले अपने परिवार, परिवेश में दूसरों द्वारा कही हुई बात को केवल सुनता है। यह निर्विवाद सत्य है कि जो व्यक्ति मूक होता है वह बोल भी नहीं पाता क्योंकि भाषा तो सुनकर ही सीखी जाती है। जब बच्चा कुछ सुनेगा ही नहीं तो वह बोलेगा क्या? बच्चे की अधिगम प्रक्रिया सुनने पर ही आधारित है। वह बात को सुनकर ही बालगीत व कहानियां समझते हुए याद रखता है। इस समझ में अध्यापक के हाव-भाव, अभिनय, (अंग संचालन) व आरोह-अवरोह का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। बच्चा कोई कहानी, कविता या नाटक के संवाद इन्हीं हाव भावादि द्वारा समझता है तथा घर में इन्हीं का प्रयोग अपने साथियों के समक्ष व्यवहार में प्रकट करता है। भले ही बच्चे को अध्यापक द्वारा कहे गए शब्दों की जानकारी कम हो परन्तु वह अध्यापक के हाव भावादि से काफी कुछ समझ लेता है। इस प्रकार सुनने का कौशल बच्चे की अधिगम प्रक्रिया का प्रथम महत्वपूर्ण सोपान है। इसी बात को स्पष्ट किया जाए तो कई बच्चे कक्षा में अध्यापक की बात को एकाग्रतापूर्वक सुनकर अच्छे अंक प्राप्त कर लेते हैं। इसके साथ-साथ अच्छा श्रोता अच्छा वक्ता भी होता है। उसके पास सुने हुए चिर परिचित-अपरिचित शब्दों का भण्डार होता है जिन्हें वह अपनी मौखिक अभिव्यक्ति में प्रयोग करता है।

सावधानियां– श्रवण कौशल को छात्रों के लिए सुखद व रोचक बनाने के लिए निम्न सावधानियों को ध्यान में रखा जाना नितांत आवश्यक है।

श्रुत-सामग्री रोचक तथा बच्चों के मानसिक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए। इसके लिए भाषायी स्तर पर शब्द बच्चों के चिर-परिचित हों। वाक्य सरल व छोटे होने चाहिएं। बच्चों को छोटी-छोटी व सरल कहानियां, बालगीत, पहेलियां व चुटकुले अधिक प्रिय व रुचिपूर्ण लगते हैं। अतः प्रारम्भिक स्तर पर बच्चों को यही सुनाए जाने चाहिए।

श्रवण-सामग्री भय या आतंक की स्थिति में न दी

जाए। उदाहरणार्थ, बच्चे को हम डाकू या राक्षस की कोई कहानी सुना रहे हैं और रात का समय है— कहानी सुनाते समय बिजली चली जाती है तो अंधेरे में वह भयावह या डरावनी कहानी सुनना पसंद नहीं करेगा। ठीक यही स्थिति कक्षा में है— अध्यापक किसी कारणवश कक्षा में क्रोधित हो जाता है तथा छात्रों को डांटने-डपटने लगता है उसके बाद किसी बात को बच्चों के समक्ष प्रस्तुत करता है तो छात्र अध्यापक की बात सहजता से नहीं सुन पाएंगे।

श्रवण-सामग्री प्रस्तुत करते हुए वक्ता का उच्चारण शुद्ध, स्पष्ट व मानक होना चाहिए। वक्ता को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह जो कुछ बोल रहा है वह स्पष्ट, शुद्ध व मानक होना चाहिए। प्रांतीयता के प्रभाव का पुट अपने बोलने में नहीं लाना चाहिए। उदाहरणार्थ श का शुद्ध उच्चारण जैसे शादी के स्थान पर सादी, पढ़ना के स्थान पर परना, राजेन्द्र के स्थान पर राजिन्दर, जल के स्थान पर जौल आदि वाक्य विन्यास में भी निम्न वाक्य बोले जाते हैं।

मुझको यह काम करना है। (अशुद्ध)
मुझे यह काम करना है। (शुद्ध)
सब्जी वहां पड़ी है। (अशुद्ध)
सब्जी वहां रखी है। (शुद्ध)
राम के पिताजी सज्जन व्यक्ति हैं। (अशुद्ध)
राम के पिताजी सज्जन हैं। (शुद्ध)

श्रवण-सामग्री आयु-वर्ग के उपयुक्त दी जाए। बच्चों के आयु स्तर को ध्यान में रखकर ही हमें श्रवण सामग्री प्रस्तुत करनी चाहिए। इसके लिए अध्यापक को चाहिए कि प्रारम्भिक स्तर पर उनके घर-परिवार तथा परिवेश की ही जानकारी दी जाए। यदि विषय-वस्तु को समझाना है तो विषय को घर-परिवार व परिवेश के वातावरण व उदाहरणों से जोड़ा जाए। इससे बच्चे महसूस करेंगे कि विषय-सामग्री उनके आसपास से जुड़ी हुई है तथा उसे वे आसानी से समझ जाएंगे।

समय का ध्यान रखते हुए श्रुत-सामग्री दी जाए, न कि उन पर थोपी जाए। छात्रों की अवधारणा शक्ति को ध्यान में रखकर ही बात कही जाए। समय से अधिक सामग्री बच्चों को नीरस, कठिन व उलझाने वाली प्रतीत होती है। अनुसंधानकर्ताओं की खोज से यह स्पष्ट हो गया है कि प्रथम व द्वितीय कक्षा के बच्चे एकाग्रतापूर्वक अध्यापक की बात को 8-10 मिनट ही सुनते हैं व समझते हैं। इससे अधिक तो वे मात्र सुनते ही हैं, सुनकर समझते नहीं। अतः अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह जरूरत से ज्यादा श्रुत-सामग्री न थोपे, अन्यथा उनकी सुनने की लालसा ही समाप्त हो जाएगी। अतः विषय-वस्तु को बच्चों पर थोपने के बजाए समझाकर सुनने की आदत डाली जाए।

श्रवण-सामग्री में बाधक तत्व

श्रवण-सामग्री को छात्र तब तक एकाग्रतापूर्वक ग्रहण नहीं कर सकता जब तक निम्न कारक उपस्थित हों—

एकाग्रता का अभाव — छात्रों की अधिगम प्रक्रिया तब तक सफलतापूर्वक सम्पन्न नहीं हो सकती जब तक वे श्रुत-सामग्री के प्रति एकाग्र न हों। एकाग्रता पर ही प्रत्यक्ष ज्ञान, निर्णय करने की शक्ति, चिंतन व तर्कशक्ति आधारित है। अतः कक्षा में अध्यापक को चाहिए कि विषय को इस प्रकार रोचक, प्रभावपूर्ण व आनंददायक बनाए जिससे छात्र सुनने के लिए तत्पर हो जाएं। इसमें अध्यापक का व्यक्तित्व भी सौम्य व मधुर होना आवश्यक है। बच्चों को समझने की क्षमता होनी चाहिए तथा मनोविज्ञान का सहारा लेकर छात्रों के समक्ष विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण उदाहरणों द्वारा तथा अध्यापन-सहायक-सामग्री के माध्यम से करना चाहिए। इसके साथ-साथ बच्चे निःसंकोच होकर प्रश्न पूछ सकें तथा अपनी समस्याएं अध्यापक के समक्ष रख सकें।

अध्यापक तथा छात्रों का अन्तर्सहसंबंध का अभाव— एक सफल अध्यापक वही है जो छात्रों के साथ अन्तर्सह-संबंध समुचित रखे। इसके अभाव में छात्रों की झिझक, घबराहट दूर नहीं होगी। इस बात का ध्यान रखा जाए कि यह संबंध मर्यादित व अनुशासित हो, अन्यथा कक्षा का वातावरण अनुशासनहीन हो जाने की संभावना रहती है।

शोर प्रदूषण— विद्यालय तथा कक्षा का वातावरण यदि

शोर प्रदूषण से युक्त होगा तो छात्रों की एकाग्रता बाधित होती है। यही कारण है कि विद्यालय तथा विश्वविद्यालय ऐसे शोर के वातावरण से अलग होने चाहिएं। महानगरों में यह समस्या बहुत अधिक है। कई बार देखने में आया है कि कक्षा में पंखा इतनी आवाज करता है कि न तो अध्यापक की कही बात छात्रों तक पहुंच पाती है और न ही छात्रों की बातें अध्यापक स्पष्टतः सुन पाते हैं।

भौतिक सुविधाओं का अभाव – विद्यालय या कक्षा में भौतिक सुविधाओं के अभाव में भी छात्रों की एकाग्रता बाधित होती है। बिजली के अभाव के कारण कक्षा-कक्षों में अंधकारमय वातावरण, खुले रोशनदान व खिड़कियों के अभाव में भी यह समस्या उत्पन्न होती है। छात्र कितने धैर्य व एकाग्रता से अध्यापक की बातें सुन रहे हैं तथा कितना समझ पा रहे हैं उनकी शारीरिक चेष्टाओं का अवलोकन नहीं हो पाता।

श्रवण कौशल को विकसित करने की विधियां/क्रियाकलाप

छात्रों के श्रवण-कौशल को विकसित करना उसे ज्ञानार्जन व शिक्षण-अधिगम के लिए तत्पर करना है। अध्यापक छात्रों में इस दक्षता का जितना विकास करेंगे उतनी ही अध्ययन के प्रति उनकी रुचि व क्षमता विकसित होगी। इस कौशल को विकसित करने की निम्न विधियों व क्रियाकलापों का संकेत किया जा रहा है।

प्रश्न पूछकर – उदाहरण के लिए अध्यापक ने कक्षा में छात्रों के समक्ष निम्न विषय-वस्तु प्रस्तुत की–

सुबह का समय था। बगीचे में रंग-बिरंगे फूल खिले थे। पक्षी चहचहा रहे थे। सिद्धार्थ बगीचे में घूम रहा था। अचानक पक्षियों का चहचहाना बंद हो गया। उनके चीखने की आवाजें आने लगीं। सिद्धार्थ को ऐसा लगा कि जैसे पक्षी डरकर चिल्ला रहे हों। उसने ऊपर देखा तभी एक हंस उनके पैरों के पास आ गिरा। हंस के शरीर में तीर लगा हुआ था। वह तड़प रहा था।

प्रश्न ☐ सुबह के समय बगीचे में कैसा दृश्य था?

☐ बगीचे में कौन घूम रहा था?

☐ सिद्धार्थ के पैरों के पास क्या गिरा?

☐ हंस क्यों तड़प रहा था?

कहानी सुनाकर – अध्यापक हाव-भाव, अभिनय, आरोह-अवरोह के साथ छात्रों को 'बीरबल की खिचड़ी' कहानी सुनाएं तथा बीच-बीच में छात्रों की एकाग्रता बोधगम्यता के मूल्यांकन के लिए पात्र, घटनाओं से संबंधित प्रश्न पूछते रहें। बच्चों की उत्सुकता से संबंधित प्रश्नों का समाधान करते रहें। इसके पश्चात् श्रवण-कौशल का मूल्यांकन करने के लिए निम्न प्रश्न पूछे जा सकते हैं–

बच्चों की मुखाकृति व हावभाव से भी मूल्याकंन किया जा सकता है जैसे प्रसन्न हैं, समझकर वे आत्मसंतोष का अनुभव कर रहे हैं।

प्रश्न ☐ बीरबल कौन थे?

☐ ब्राह्मण ने बादशाह के सामने क्या कहा? उसके कहने पर अकबर बादशाह ने ब्राह्मण से क्या कहा।

☐ जब ब्राह्मण ने बादशाह से कहा कि "महाराज, आपके राजमहल से दीपक से प्रकाश आ रहा था, मैं उसे देखते हुए सारी रात पानी में खड़ा रहा,"– यह सुनकर बादशाह ने ब्राह्मण से क्या कहा?।

☐ ब्राह्मण को उदास देखकर बीरबल ने क्या सोचा तथा क्या किया?

☐ बीरबल की बात सुनकर बादशाह को क्या महसूस हुआ और उन्होंने क्या किया?

कविता सुनाकर – अध्यापक कक्षा में 'कोयल' कविता का हाव-भाव अभिनव, उतार-चढाव व अंग संचालन द्वारा लय के साथ कविता का स्वर वाचन करे।

काली कोयल बोल रही है
डाल-डाल पर डोल रही है।
कुहू-कुहू का गीत सुनाती।
कभी नहीं मेरे घर आती।
आमों की डाली पर गाती।।
बच्चों के दिल को बहलाती।।
कूक-कूक कर किसे बुलाती,

क्या अम्मा की याद सताती।
यदि हम भी कोयल बन जाते।
उड़ते फिरते, गीत सुनाते।

प्रश्न
- ☐ इस कविता में किसके बारे में कहा गया है?
- ☐ कोयल का रंग कैसा होता है?
- ☐ कोयल कैसे गाती है?
- ☐ कोयल को कौन-सा पेड़ अधिक प्रिय है अथवा कोयल अधिकतर किस पेड़ पर रहती है?
- ☐ कोयल को देखकर बच्चों के मन में क्या इच्छा उत्पन्न होती है?

पहेलियों द्वारा — पहेलियों द्वारा भी बच्चों के श्रवण कौशल, चिंतन-मनन व तर्क शक्ति का विकास होता है।

ऐसा लिखिए शब्द बनाय
फूल, मिठाई, फल बन जाए।
हरी थी मन भरी थी,
लाख मोती जड़ी थी।
राजा जी के बाग में,
दोशाला ओढ़े खड़ी थी।

चुटकुलों द्वारा—

● रमेश—भाई! रात को सूर्य क्यों नहीं उगता?
सुरेश— निकलता तो है।
रमेश—फिर दिखाई क्यों नहीं देता?
सुरेश—अरे! अंधेरे में दिखाई कैसे देगा?

● मालकिन— रामू, मैंने कहा था, पूजा के लिए धूप ले आना।

रामू— मगर लाता कहां से? मालकिन, आज तो दिन भर बादल छाए रहे।

अन्ताक्षरी द्वारा— प्रारंभिक स्तर पर बच्चों को शब्द निर्माण के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।
उदाहरण— रथ थाल लैम्प पानी नल आदि।

इसी प्रकार तीसरी कक्षा से पांचवी कक्षा तक छात्रों में कविता की पंक्तियों द्वारा छात्रों के श्रवण-कौशल का विकास किया जा सकता है।

उदाहरण—

● सबसे पहले मेरे घर का,
अंडे जैसा था आकार।
तब मैं यही समझती थी बस,
इतना सा ही है संसार।

● रिमझिम-रिमझिम सी बूंदें
जग के आंगन में आईं।
अपने लघु, उज्जवल तन में,
कितनी सुन्दरता लाईं।

संवाद बोलकर सुनाना

छात्र अनुकरण प्रिय होते हैं। वे अध्यापक नेता या किसी अन्य व्यक्ति के हावभाव, बोलचाल का शीघ्र ही अनुकरण करने लगते हैं। यहां तक कि अध्यापकों के उपनाम भी रख लेते हैं। आज के वैज्ञानिक युग में दूरदर्शन ने बच्चों में इस क्षमता का भरपूर विकास कर दिया है। अभिनेता-अभिनेत्रियों के हावभाव व अभिनय को जीवन में ढालने का प्रयास करते हैं। अतः अभिनय कला में दक्षता हेतु अध्यापक इस कौशल का छात्रों में विकास कर सकते हैं।

उदाहरण

कुश—अहा! कितना सुन्दर घोड़ा। भैया, लव भैया! इधर आओ। देखो, कितना सुन्दर घोड़ा हमारे आश्रम में आ गया है। आओ, इसे पकड़ें।

लव— कुश, घोड़े को मत छेड़ो। देखो, यह इधर ही आ रहा है। हम पेड़ के पीछे छिप जाते हैं। घोड़ा इधर आएगा तो पकड़ लेंगे।

भाषण द्वारा— बच्चे विद्यालय में मनाए गए पर्वों, उत्सवों तथा अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा औपचारिक रूप से संबोधन करना, विषय को प्रस्तुत करना देखते व सुनते हैं। इससे उन्हें औपचारिक शब्दावली का प्रयोग करना भी आता है तथा मंच पर किन-किन शब्दों को किस तरह प्रस्तुत करना है, बच्चे सुनकर व देखकर

ही सीखते हैं। बालसभा, आज का विचार तथा नैतिक मूल्यों पर अध्यापक व छात्रों द्वारा जो बातचीत प्रस्तुत की जाती है उससे बच्चों के श्रवण-कौशल का विकास होता है। दूरदर्शन पर दिखाए व सुनाए गए राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री के भाषणों को सुनाकर भी बच्चों को श्रवण कौशल विकसित किया जा सकता है।

वाद-विवाद द्वारा— विद्यालय में सहगामी क्रियाकलापों में वाद-विवाद प्रतियोगिता द्वारा बच्चों के सुनने का कौशल विकसित तो होता ही है, इससे बच्चों में तार्किक शक्ति तथा विषयानुकूल चिंतन-मनन की शक्ति का भी विकास होता है।

इन सभी क्रियाकलापों को टेपरिकार्डर/ऑडियो कैसेट द्वारा भी सुनाया जा सकता है। इन विधियों के अतिरिक्त बातचीत, घटना वर्णन, चित्र प्रदर्शन द्वारा भी श्रवण-कौशल का विकास किया जा सकता है। इसका मूल्यांकन करने के लिए अध्यापक टेपरिकार्डर व ऑडियो कैसेट की श्रवण सामग्री को सुन सकता है तथा उससे संबंधित प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं। ❑❑

प्रवक्ता
पूर्व सेवा शिक्षक शिक्षा विभाग
राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली

जीवन दर्शन तथा शिक्षा मनोविज्ञान–कुछ प्रश्न

❑ कृष्ण गोपाल रस्तोगी

जीवन दर्शन और मनोविज्ञान का घनिष्ठ संबंध है। भारतीय जीवन दर्शन के अनुसार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ कहे जाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि धर्म के आधार पर सामाजिक दृष्टि से अर्थोपार्जन किया जाए तथा आवश्यक और सीमित इच्छाएं रखकर अर्थ की सहायता से उनकी पूर्ति की जाए। असीमित इच्छाएं विभिन्न प्रकार के भेदभाव तथा संघर्षों को जन्म देती हैं। गांधीजी के अनुसार 'प्रकृति लोगों की आवश्यकताओं की तो पूर्ति कर सकती है, पर उनके लालच की नहीं।' जब लोगों की इच्छाएं बहुत बढ़ जाती हैं तो उससे समाज का संतुलन बिगड़ जाता है।

शैक्षिक चिंतकों तथा समितियों व आयोगों ने शिक्षा का उद्देश्य छात्र-छात्राओं में योग्य व उचित व्यवहार का विकास' माना है। इस दृष्टि से व्यक्ति के विकास हेतु मनोविज्ञान अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि व्यक्तित्व की संकल्पना को बिना समझे उसके विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। शिक्षा व्यक्तित्व के विकास के लिए किया जाने वाला सुव्यवस्थित प्रयास है। अतःएव शिक्षा व मनोविज्ञान का घनिष्ठ संबंध होने के कारण शिक्षा तथा शिक्षा से संबंधित सभी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में, विशेषतया शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में शिक्षा मनोविज्ञान सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान के घनिष्ठ संबंध को स्वीकार करते हुए आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान के संबंध में निम्नलिखित प्रश्न उठाए जा सकते हैं–

- ❑ शिक्षा मनोविज्ञान व्यवहार शास्त्र है या विज्ञान है?
- ❑ क्या मनोविज्ञान को विज्ञान का रूप देने के लिए सांख्यिकी का इतना प्रयोग शिक्षा मनोविज्ञान के विकास हेतु उपयोगी है?
- ❑ क्या शिक्षा मनोविज्ञान इस धारणा को स्वीकार नहीं करता कि प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व भिन्न है?
- ❑ क्या भिन्न व्यक्तित्व के विकास के लिए भिन्न शैक्षिक प्रयासों की आवश्यकता है?
- ❑ क्या विभिन्न समाजों के जीवन दर्शन से उन समाजों के व्यक्तियों के व्यक्तित्व का संबंध है?
- ❑ क्या दर्शनशास्त्र तथा मनोविज्ञान अथवा शिक्षा मनोविज्ञान का परस्पर कोई संबंध है?
- ❑ क्या मानव तथा अन्य पशु-पक्षियों के मनोविज्ञान में अंतर है?

उपर्युक्त प्रश्नों पर विचार करने के लिए मेरे दो अनुभव संगत प्रतीत होते हैं। एक सन् 1947 में लेखक ने बी. ए. में दर्शनशास्त्र विषय लिया था। उस समय दर्शनशास्त्र के विषय में मनोविज्ञान, आचार शास्त्र तथा तत्व मीमांसा सम्मिलित थे। मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र का अंग था। दूसरा, बी. एड. और एम. एड. के पाठ्यक्रमों में शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत 'अनिवार्य अनुकूलन सिद्धांत' पढ़ाई गई जो पशुओं व पक्षियों पर किए गए प्रयोगों पर आधारित है जबकि मानव इनसे भिन्न है। मानव कल्पनाशील और सृजनात्मक है जिसके परिणामस्वरूप

उसका संबंध भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों से है, जबकि पशुओं और पक्षियों का संबंध केवल भूतकाल और वर्तमान से होता है। चूंकि आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान में दर्शनशास्त्र का महत्व न के बराबर रह गया है, इसलिए उसके अन्तर्गत व्यक्तित्व की परिभाषा भी बहुत सीमित रूप में दी गई है, पर शिक्षा मनोविज्ञान हेतु मानव के व्यक्तित्व को ठीक प्रकार समझना आवश्यक है। इस दृष्टि से संस्कृत साहित्य में व्यक्तित्व की परिभाषा संतोषजनक ढंग से दी गई है। तैत्रिय उपनिषद् में मानवीय व्यक्तित्व को पंचकोष के रूप में परिभाषित किया है। ये हैं– अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, ज्ञानमय कोष तथा आनन्दमय कोष। कोषीय दृष्टि से मानव जड़ पदार्थों, वनस्पति तथा पशु-पक्षियों से भिन्न है। पत्थर जैसी निर्जीव वस्तुएं केवल एक कोषीय होती हैं, वनस्पति में केवल अन्नमय कोष तथा प्राणमय कोष होने के कारण वे दो कोषीय होती हैं। पशु-पक्षी में ज्ञानमय कोष तथा आनन्दमय कोष न होने के कारण वे केवल त्रिकोषीय होते हैं। पशु-पक्षियों का व्यवहार, शरीर, प्राण तथा मन से प्रेरित होता है, उन्हें ज्ञान नहीं होता और वे आध्यात्मिक आनंद से वंचित रहते हैं, जो भौतिक सुख-दुःख से भिन्न है।

मानवीय व्यक्तित्व को परिभाषित करने के लिए गीता में त्रिगुणात्मक प्रकृति का भी वर्णन किया गया है जो सत, रज और तम संकल्पनाओं द्वारा परिभाषित की गई हैं। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व पर इन तीनों गुणों का प्रभाव रहता है। पृथक्-पृथक् व्यक्तित्व में प्रधानता की दृष्टि से इनमें अंतर होता है। इन गुणों के आधार पर भी अनेक प्रकार के व्यक्तित्व की रचना होती है।

मानवीय व्यक्तित्व का तीसरा आधार शरीर की प्रकृति है। दर्शनशास्त्र में तीन प्रकार के शरीर माने गए हैं– स्थूल, कारण तथा सूक्ष्म। सूक्ष्म शरीर आत्मा के नाम से जाना जाता है। आत्मा अथवा सूक्ष्म शरीर नित्य और निर्विकार माना जाता है। कारण शरीर पूर्व जन्मों के संस्कारों का संचित रूप है तथा स्थूल शरीर वर्तमान प्रारूप का द्योतक है। ये तीनों शरीर परस्पर संबंधित हैं तथा तीनों एक-दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। इस प्रकार इन तीनों आयामों से निर्मित प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व पृथक होता है। किन्हीं दो व्यक्तियों में कुछ समानताएं हो सकती हैं पर वे पूर्णतया समान नहीं होते। ध्यातव्य है कि शिक्षा व्यवस्था में कुछ सामान्य प्रयास किए जा सकते हैं परन्तु किसी भी व्यक्ति की पूर्ण शिक्षा तब तक संभव नहीं है जब तक उसके व्यक्तित्व की प्रकृति की दृष्टि से उस पर विशेष रूप से ध्यान न दिया जाए।

शिक्षा के उद्देश्य में विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास की कल्पना की गई है। सर्वांगीण विकास की संकल्पना के अन्तर्गत ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा व्यवहारात्मक तीनों प्रकार का विकास निहित है। ज्ञानात्मक विकास महत्वपूर्ण है पर भावात्मक तथा व्यवहारात्मक विकास व्यवहार की दृष्टि से अधिक आवश्यक है। गीता में ज्ञानयोग तथा भक्तियोग को महत्वपूर्ण माना है पर इन दोनों की अपेक्षा कर्मयोग को अधिक वरीयता दी गई है क्योंकि व्यक्ति का निर्माण और समाज की रचना व्यवहार पर ही आधारित है।

व्यक्ति को जीवन में विभिन्न संदर्भों में व्यवहार करना होता है। वे हैं– स्वयं, परिवार, पड़ौस, समाज कार्यस्थल, देश, विश्व तथा ब्रह्मांड। व्यक्ति का व्यवहार उसकी भौतिक, सामाजिक तथा भावात्मक आवश्यकताओं, व्यक्तिगत गुणों तथा मानवीय दर्शन व समाज विशेष के दर्शन द्वारा निर्धारित मूल्यों के परस्पर संबंध पर आधारित होता है। कई बार व्यक्ति के इन पांचों आयामों में द्वन्द्व होता है। वह अपने ज्ञानात्मक तथा भावात्मक विकास के आधार पर निर्णय लेकर व्यवहार करता है। उसके व्यवहार की श्रेष्ठता का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि वह व्यापक व महत्वपूर्ण संदर्भ के लिए सीमित व कम महत्वपूर्ण संदर्भ का त्याग कर दे। व्यक्ति का इस प्रकार का व्यवहार तब तक संभव नहीं है जब तक उसकी मनोभावना स्वस्थ जीवन दर्शन से पुष्ट न हो।

इस प्रकार जीवन दर्शन और मनोविज्ञान का घनिष्ठ संबंध है। भारतीय जीवन दर्शन के अनुसार धर्म, अर्थ,

काम, मोक्ष पुरुषार्थ कहे जाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि धर्म के आधार पर सामाजिक दृष्टि से अर्थोपार्जन किया जाए तथा आवश्यक और सीमित इच्छाएं रखकर अर्थ की सहायता से उनकी पूर्ति की जाए। असीमित इच्छाएं विभिन्न प्रकार के भेदभाव तथा संघर्षों को जन्म देती हैं। गांधीजी के अनुसार 'प्रकृति लोगों की आवश्यकताओं की तो पूर्ति कर सकती है, पर उनके लालच की नहीं।' जब लोगों की इच्छाएं बहुत बढ़ जाती हैं तो उससे समाज का संतुलन बिगड़ जाता है। इसलिए भारतीय जीवन दर्शन में विकारों की सूची में काम को सबसे ऊपर रखा गया है। काम ऐसा विकार है जो क्रोध, लोभ, मद और मोह अन्य चारों विकारों को जन्म देता है। यदि किसी की कामना पूरी हो जाती है तो उसे उसके प्रति मोह हो जाता है और उसके कारण उसे मद भी हो जाता है साथ ही उसे अधिक प्राप्त करने का लोभ होता है। इच्छा पूरी न होने पर व्यक्ति को क्रोध आता है। काम की एक विशेषता यह भी है कि यदि व्यक्ति को किसी प्रकार की इच्छा और उसकी पूर्ति की इच्छा या सामर्थ्य नहीं रहती तब भी उसमें उसकी वासना बनी रहती है जिसके कारण उसका व्यवहार वांछित नहीं रह पाता। इस प्रकार उपर्युक्त पुरुषार्थ जीवन दर्शन का विषय है जबकि मनोविकार मनोविज्ञान का विषय है। इनका व्यावहारिक स्वरूप प्रत्येक समाज में भिन्न दिखाई देता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जीवन दर्शन, सामान्य मनोविज्ञान व शिक्षा मनोविज्ञान का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। □□

ई-923, सरस्वती विहार
दिल्ली

21वीं शताब्दी में अध्यापक शिक्षा की चुनौतियां

❒ भारतेन्दु मिश्र

अध्यापक को राष्ट्र निर्माता मानने वालों को अपने मत में परिवर्तन करना होगा। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा नीति के अभाव में राष्ट्र का निर्माता कैसे हो सकता है। शासन का पहला कर्तव्य यह हो जाता है कि शिक्षा का राष्ट्रीयकरण करे। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि समुदाय द्वारा उत्पन्न अनेक समस्याओं का अन्त हो जाएगा और समानता का भाव विकसित होगा। शिक्षा की घोषणा राष्ट्रीय नीति में संशोधन कर उसे राष्ट्र के अनुकूल बनाएं तथा शिक्षा को दलगत राजनीति से परे रखा जाए क्योंकि तात्कालिक लाभ के बजाय भावी समाज का निर्माण करने में सफलता प्राप्त होगी।

प्राचीन काल में अध्यापक प्रशिक्षण का कोई विधान नहीं था परन्तु शिक्षा देने का अधिकारी वही था जो विद्या पर पूर्ण अधिकार करने के साथ-साथ विद्या को जीवन में उतारने में समर्थ होता था। सामान्यतः वानप्रस्थ आश्रम में पहुंचने पर व्यक्ति को जीवन का पर्याप्त अनुभव हो जाता था यही वास्तविक प्रशिक्षण था। भारत में विद्यादान को महादान माना गया है। यहां पर शिक्षकों का इतना सम्मान था कि तिब्बत, चीन, जापान से छात्र पढ़ने के लिए आते थे। तैत्रीय उपनिषद् में 'आचार्य देवो भव' कहा गया है। बौद्ध तथा जैन युग में भी अध्यापक की प्रतिष्ठा महान थी क्योंकि वे आत्मज्ञान देते थे।

ब्रिटिश युग में विधिवत शिक्षक शिक्षा की आवश्यकता महसूस की गई। 1881-82 में पहले पहल शिक्षकों को प्रशिक्षण देने का सुझाव दिया गया। सबसे पहले सेरमपुर में डेनमार्क में धर्मोपदेशकों ने स्कूल खोला। 1826 में भारत में प्रशिक्षण स्कूल की स्थापना की गई। 1904 में भारतीय शिक्षा नीति के प्रस्ताव में भारतीय शिक्षा सेवा में योग्य तथा उच्च प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों की नियुक्ति पर बल दिया गया। 1910 में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने तो इण्टरमीडिएट व स्नातक पाठ्यक्रमों में शिक्षा विषय को आरम्भ किया। 1929 में हर्टाग समिति ने अभिनव पाठ्यक्रमों की व्यवस्था पर बल दिया। इस प्रकार का बल मुदलियर और राधाकृष्ण आयोग ने भी दिया।

राष्ट्र निर्माण का उत्तरदायित्व अध्यापकों पर सौंपा जाता है। किसी अंश तक यह बात ठीक भी है। भावी पीढ़ी के प्रशिक्षण का कार्य उनके कंधों पर ही रहता है। आज अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में सरकार के सामने गुणात्मक सुधार की चुनौती है। यदि अध्यापकों की शिक्षा का गुणात्मक विकास नहीं होता तो उसका परिणाम भावी पीढ़ी के लिए अच्छा नहीं होगा। इससे शिक्षा का स्तर और भी गिरता है। 21वीं शताब्दी की चुनौतियों का सामना करने के लिए शिक्षा एक सक्षम साधन माना गया है। शिक्षा द्वारा आवश्यक ज्ञान कौशल तथा अभिवृत्ति का विकास सम्भव है जिससे भावी चुनौतियों को समझने और समाधान निकालने की क्षमता अर्जित होती है, शिक्षा द्वारा शान्ति, स्वतंत्रता तथा सामाजिक न्याय जैसे आदेशों की प्राप्ति संभव है। इसलिए शिक्षा वैधानिक व सामाजिक भूमिका में अहम् भूमिका निभाती है। सबके लिए शिक्षा

एक आवश्यक व अनिवार्य सत्य माना गया है, जिससे शत्-प्रतिशत् साक्षरता अर्जित की जा सके। यूनेस्को अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने 1972 में अपने प्रतिवेदन "Learning to be में स्पष्ट किया था कि शिक्षा छात्र का मूल अधिकार है। इस विचार को भारत ने सहर्ष स्वीकारा है। आज शिक्षा दान नहीं, अपितु बालक का मूल अधिकार है।

यह सत्य है कि शिक्षा मानव संसाधन व राष्ट्रीय विकास का मूल साधन है किन्तु व्यक्ति के मुक्त चिन्तन और समाज हित में व्यक्तित्व का विकास अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिसकी प्रमुख चुनौतियां हैं—

- ☐ प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर प्रशिक्षण के समय प्रशिक्षणार्थियों को शिक्षण विधियों के साथ-साथ विषय ज्ञान दिया जाए। प्रशिक्षण काल के मध्य यह प्रश्न सदैव उठता है कि किसी भी स्तर पर प्रशिक्षण काल की अवधि कितनी होनी चाहिए। इस संबंध में कोठारी आयोग ने दो प्रकार की संस्तुतियां प्रस्तुत की हैं—
  - प्राथमिक स्तर पर प्रशिक्षण काल दो वर्ष का होना चाहिए।
  - माध्यमिक स्तर पर यह भी सुझाया जाता है कि जहां पर एक वर्ष का पाठ्यक्रम है वह भी दो वर्ष का होना चाहिए।

  इस संबंध में सबसे अधिक कठिनाई यह है कि यह कार्य आर्थिक तथा व्यावसायिक दृष्टि से उपयोगी नहीं है। शिक्षा आयोग ने इसका अच्छा उपाय यह बताया है कि एक वर्ष में कार्य दिवसों की संख्या बढ़ा दी जाए। आजकल यह 180-190 दिन है जिसे बढ़ाकर 230 दिन कर दिया जाए। कुछ प्रशिक्षण संस्थानों में कार्य दिवस बढ़ाने के परीक्षण अधिक सफल हुए हैं।
- ☐ स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में शिक्षा का विस्तार हुआ है। 1947 में साक्षरता मात्र 17 प्रतिशत् थी और आज 62 प्रतिशत् है अर्थात् 38 प्रतिशत् निरक्षरों को साक्षरता की सीमा में लाना है।
- ☐ सामान्य और व्यावसायिक पाठ्यक्रम का मिला-जुला कार्यक्रम विकसित करना। (इस दिशा में अमेरिका में प्रयोग हो चुका है। भारत में भी कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में हाईस्कूल के बाद चार वर्ष का पाठ्यक्रम बनाया गया था और रीज़नल कॉलेज ऑफ एजुकेशन में भी पांच वर्षीय पाठ्यक्रम चलाए गए। इन संगठित पाठ्यक्रमों को अभी तक विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा विभागों ने मान्यता नहीं दी है)।
- ☐ विद्यालयी शिक्षा में अपव्यय तथा अवरोधन को रोकना।
- ☐ आज के व्यावसायिक पाठ्यक्रम में निर्धारित अनेक प्रकरण अनुपयोगी हैं। ऐसे प्रकरणों को निकाल देना चाहिए। वही प्रकरण होने चाहिए जो उपयोगी हों। आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न पाठ्यक्रमों का समन्वय तथा संगठन भारतीय परिस्थितियों के अनुसार हो।
- ☐ प्रशिक्षण संस्थानों में छात्राध्यापकों के कार्य का मूल्यांकन करने की प्रवृति परम्परागत प्रणालियों में प्रचलित है। छात्र प्रायोगिक परीक्षा में ही अच्छी श्रेणी प्राप्त करने के लिए सामान्यतः धन उपायों को अपनाते हैं— ● प्राध्यापक की खुशामद करना, दूसरे प्राध्यापक की निन्दा करना ● प्राध्यापक के घर अनावश्क उपहार पहुंचाना। इसका परिणाम यह होता है कि जो छात्र वास्तव में प्रथम क्षेणी के योग्य हैं उन्हें न मिलकर अयोग्य छात्रों को प्रथम श्रेणी प्राप्त हो जाती है। मूल्यांकन व शिक्षण विधियों में आमूल-चूल परिवर्तन आवश्यक है।
- ☐ छात्राध्यापक जिन पाठों द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं उनका नियोजन व निरीक्षण ठीक ढंग से न होना। शिक्षण अभ्यास अवधि 2-6 सप्ताह से बढ़ाकर 8 सप्ताह करना और लिखे पाठों को न मानना।
- ☐ शिक्षा के विकास के लिए आवश्यक है कि नए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाए तथा शिक्षा विषय को भारत के समस्त विश्वविद्यालयों में स्नातक व परास्नातक स्तर पर लागू किया जाए।
- ☐ भारतीय संदर्भ में शिक्षा में विविधता है तथा शैक्षिक समानता की कमी के साथ-साथ समस्त छात्रों को

समान अधिगम अवसर उपलबध नहीं होते, इसलिए समृद्ध तथा असक्षम में लगातार अन्तराल बना है, इसे कम करना।

- बालिका शिक्षा पर बल देना।
- विद्यालयी शिक्षा में संसाधनों का बहुत अभाव है। संसाधनों की उपलब्धता की दृष्टि से विद्यालयों में अत्यधिक अन्तर है, इस अन्तर को दूर करना।
- भारत में शिक्षा पर बजट का मात्र 3.9 प्रतिशत् व्यय किया जाता है जिसे सामान्य तौर पर कम से कम 6 प्रतिशत् करना आवश्यक है।

आज परिस्थितियां बदल गई हैं। अध्यापक को राष्ट्र निर्माता मानने वालों को अपने मत में परिवर्तन करना होगा। अध्यापक राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अभाव में राष्ट्र का निर्माता कैसे हो सकता है। शासन का पहला कर्तव्य यह हो जाता है कि शिक्षा का राष्ट्रीयकरण करे। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि समुदाय द्वारा उत्पन्न अनेक समस्याओं का अन्त हो जाएगा और समानता का भाव विकसित होगा। शिक्षा की घोषणा राष्ट्रीय नीति में संशोधन कर उसे राष्ट्र के अनुकूल बनाए तथा शिक्षा को दलगत राजनीति से परे रखा जाए क्योंकि तात्कालिक लाभ के बजाय भावी समाज का निर्माण करने में सफलता प्राप्त होगी।

विद्यालयी शिक्षा का सीधा संबंध शिक्षक प्रशिक्षण से है यदि शिक्षक प्रभावी है तो सामान्य शिक्षा में स्वतः ही उत्तमता व गुणवत्ता आ जाती है। किन्तु भारतीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षक प्रशिक्षण रूढ़िवादिता आधारित है और इसमें शिक्षक नवाचारों की कमी है। भारत में शिक्षा में विभिन्न स्तरों में अध्यापक एक-दूसरे से कोई सम्बंध नहीं रखते तथा कोई सहयोग नहीं देते जबकि सभी का उद्देश्य शिक्षा की प्रक्रिया को सम्पादित करना होता है। शिक्षण की पुनर्रचना में शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षक का कार्य बड़ा कठिन है, प्रत्येक व्यक्ति एक कुशल शिक्षक नहीं हो सकता। प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों का विकास तेजी से हो रहा है किन्तु प्रशिक्षित व योग्य अध्यापकों का अभाव है।

यूनेस्को के अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग प्रतिवेदन– "अधिगम, अन्तर्निहित क्षमता" 1986 में शिक्षा के चार स्तम्भ स्पष्ट किए गए हैं, जिनका उपयुक्त प्रयोग भारतीय शिक्षा में संभव है।

- ज्ञान के लिए अधिगम।
- कार्य के लिए अधिगम।
- कुछ बनने के लिए अधिगम।
- साथ रहने के लिए अधिगम।

उपर्युक्त शैक्षिक अवधारणा भारतीय संस्कृति व दर्शन में समाहित है जिसमें व्यक्ति मात्र भौतिक सुख के लिए नहीं, अपितु जीवन में प्रसन्नता व सुख की प्राप्ति हेतु किसी उच्च जीवन लक्ष्य के लिए देखता है। 'वसुधैव कुटुंबकम' एक भारतीय धरोहर है जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत की जा रही है जिसमें कर्मयोगी होना एक साधना है।

इस प्रकार जब तक शिक्षण को प्रभावी नहीं बनाया जाएगा, व्याख्यान को कम नहीं किया जाएगा, छात्राध्यापकों को वार्तालाप में संलग्न नहीं किया जाएगा, उन्हें शैक्षिक सिद्धांत और उनके प्रयोग के संबंध में निर्णय लेने योग्य नहीं बनाया जाएगा, तब तक हम समर्थ अध्यापक का निर्माण नहीं कर सकते। सबसे आवश्यक तथ्य यह है कि राष्ट्रीय साक्षरता मिशन को प्रभावी बनाकर शिक्षा द्वारा प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास व जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसर उपलब्ध हों, तभी एक जिज्ञासु समाज को स्वतंत्र, संवेदनशील व्यक्ति यह कहने का साहस जुटा सकेगा कि "अधिगम मेरा अधिकार है।" इसे प्राप्त करना ही 21वीं शताब्दी की सर्वश्रेष्ठ चुनौती है।

महर्षि अरविन्द ने कहा था– "अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींच-सींच कर महाप्राण शक्तियां बनाते हैं।" ☐☐

बलभद्र इण्टर कॉलेज पाली
सुबावपुर, पोस्ट पाली, जौनपुर, उत्तर प्रदेश

पुराण बनाम आधुनिक विद्या

❑ बालाजी शतपथी

विकासवाद तथा वर्तमान में जो विभिन्न वाद प्रचलित हैं जैसे– वोलशेविज्म, कम्युनिज्म इत्यादि का मूल भी पुराणों में उपलब्ध होता है। सृष्टि के आरम्भ से उत्पन्न विभिन्न जातियों के इतिहास को निरूपित करें तो समय-समय में उत्पन्न विभिन्न वर्ग और वादों का मूल पुराणों में उपलब्ध क्यों नहीं हो सकता? आजकल वही प्राचीन वाद उत्पन्न हो रहे हैं। यह तो सृष्टि वैचित्र्य तथा अविद्वानों का साहसमात्र है। वर्ममान में प्रचलित वादों के बारे में यह कहना है कि वर्ग और वादों के दोषों को दूर करके उनके गुणमात्र पुराणों में ग्रहण किए गए हैं।

पुराणों के अध्ययन बिना, भारतीय संस्कृति के स्वरूप को किसी भी प्रकार से जाना नहीं जा सकता। वेदों को संक्षेप रूप में संसार के सामने लाया तो गया, किंतु उसकी प्रतिपादन शैली को हम अभी तक जान नहीं पाए, केवल यज्ञ प्रक्रिया से समाश्रित होकर उसके अनुशासन में प्रवृत होते हैं। अतः यज्ञ प्रक्रिया पर समाश्रित होकर समस्त भारतीय संस्कृति का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। किन्तु पुराण विद्या वेदों का अनुशरण करते हुए वेद की नीतियों को अपनाते हुए भारतीय संस्कृति का सर्वांगीण विकास करने में समर्थ है। चाहे वह अशिक्षित हो, अल्पशिक्षित हो या बहुशिक्षित हो, कथाओं के श्रवण मात्र से भारतीय संस्कृति को समझ जाता है। यह समझने का कारण भी पुराण विद्या ही है। यदि इस संसार में पुराण विद्या नहीं होती या पुराण विद्या अवतरित नहीं होती तो सारे भारतीय संस्कार संस्कृति अन्धेरे में आ जाती। आज भी भारत की संस्कृति जीवित है इसका मुख्य कारण पुराण विद्या ही है।

किसी ने ठीक ही कहा है कि जिस देश का इतिहास और संस्कृति सुदृढ़ होती है, वह देश स्वतंत्र होता है। ऐसा राजनीति सूत्र शिक्षाओं में निपुण, विभिन्न विद्वानों द्वारा पुराण में श्रद्धा को उत्पन्न करता है। विस्मृत कारणवश कुछ लोग अनवरत पुराण की निन्दा करना अपना कर्तव्य मानते हैं, जो उचित नहीं है तथा इस कारण पुराण कथा पद्धित का ह्रास व शिक्षितों का असहयोग भी प्राप्त हुआ। भारतीय संस्कृति के स्वरूप का ज्ञान आज भी पर्याप्त नहीं है। विशेषकर नवशिक्षित के ऊपर, परन्तु प्रयत्नशील होकर इसे प्राप्त किया जा सकता है, इसमें संशय नहीं है।

विवेक से पुनः जागृत होने की जरूरत है जो भी पुराणों को घृणा की दृष्टि से देखते थे, वे आज अपना आभार तथा आदर प्रकट कर रहे हैं। इतिहास उनके अन्वेषण में कटिबद्ध होकर नए शिक्षार्थियों के मुख से शीघ्र ही निःसृत हो रहे हैं। पुराणों के आधार के बिना भारतीय इतिहास का अन्वेषण किसी भी प्रकार से कैसे हो सकता है? बहुत सी अन्वेषण संस्थाओं में आज भी पुराण का आदर किया जाता है। उनमें दी गई अवधारणाओं का प्राक्कथन इतिहास सूत्रों में जाना जाता है। उनमें शुद्ध पाठों के अन्वेषण हेतु बहुत सारे अनुष्ठान के प्रयत्न भी प्राप्त होते हैं। सुप्रतिष्ठित विश्वविद्यालय, महाविद्यालय में भी पुराण की परीक्षा और शिक्षा आदर्श

सहित सन्निविष्ट हैं। केवल व्याकरण न्याय इत्यादि के द्वारा जीवन-यापन ही परमपुरुषार्थ है, ऐसा मानने वालों की पुराणों में श्रद्धा प्रतीत हो रही हैं। पौराणिक चर्चा, शास्त्रार्थ पण्डितों की उपहास की दृष्टि से न होकर विद्वानों की दृष्टि से होती है।

ऐसा क्रम से विक्षिप्त होता है कि उच्च शिक्षा की मूल पद्धतियों को वहन करने वाली संस्थाओं में समय-समय पर पुराण के प्रवचन भी आयोजित होते हैं। पुराणों को आधार मानकर उच्च शिक्षित लोग निबन्धों की रचना करते हैं। वैसे भी पुराणों की अपनी महिमा है, जो पथभ्रष्ट भारतीयों को भी आकर्षित करती है। जब तक घर्षण नहीं किया जाता, तब तक चमक नहीं आती। रत्न के इस सिद्धांत से पुराण रूपी मणिका प्रकाश अधिक से अधिक विकसित हो, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। जिस प्रकार पुराणों में बताई गई कथाओं को सुनकर कुछ लोग वृद्ध कथानक कहकर उपहास करते रहते हैं, वे भी आज प्रत्यक्ष रूप से वास्तविकता को देख रहे हैं। पहले ही यहां अस्त्रों का प्रचलन होता रहा है तो ऐसे विश्वास से दिव्य अस्त्रों के प्रभाव से आज परमाणु भेदन चकित क्यों हैं? इस प्रकार विश्वास करने के लिए लोग विवश हो रहे हैं। इसी प्रकार आज के लोग भी भौतिक विज्ञान में अधिक से अधिक पुराण की सत्यता को मान रहे हैं सभी विषयों का विश्वासपूर्वक मनन करने के कारण भारतीयों का मस्तक गर्व से ऊठा है। जिस प्रकार से विज्ञान आज परिश्रम करके नवीन विषयों की खोज कर रहा है, इससे भी अधिक ज्ञान का बोध प्राचीनकाल में भारतीयों को पुराण विद्या के कारण ज्ञात था जो ध्रुव सत्य है।

जो विद्याएं आजकल अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती हैं जैसे— अर्थशास्त्र (इकोनोमिक्स) भूगर्भविद्या (जियोलॉजी), मानव जाति का सर्वविध-इतिहास, विकासशास्त्र इत्यादि उनके संस्कृत भाषा में अभाव रूपी कलंक को पुराण ही साफ करते हैं या पौंछते हैं। आन्वीक्षका, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति में जो चार विद्याएं गिनी जाती हैं, इनमें से ही जो वार्ता विद्या है उसे ही आजकल के विद्वानों द्वारा अर्थशास्त्र कहा जाता है। जो वृत्ति के उपायों को विवेचित करता है वही वार्ता नामक विद्या तीन प्रकार की है। उसका लक्षण पुराणों में प्रायः दिखाई देते हैं। यह संस्कृत वांग्मय में कितनी विस्तृत थी, इसका चारों विद्याओं में एक सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने से ही स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है। परन्तु बहुत ही खेद की बात है कि आजकल उस विद्या का एक भी स्वतन्त्र ग्रन्थ संस्कृत वांग्मय में उपलब्ध नहीं होता। केवल पुराणों में ही बिखरी हुई यह विद्या आजकल उपलब्ध होती है, अथवा राजनीति ग्रन्थों में या कहीं-कहीं पर प्रसंगवश ग्रहण की जाती है और भूगर्भ विद्या भी आजकल पुराणों में उपलब्ध होती है। सौर इतिहास के जितने विभागों की कल्पना आधुनिक विद्वान करते हैं, उसके साथ-साथ सभ्यता का इतिहास, शासन का इतिहास, विभिन्न जातियों के उद्गम का इतिहास इत्यादि सभी विभागों को पुराणों में संक्षेप से अथवा विस्तार से प्राप्त किया जाता है।

विकासवाद तथा वर्तमान में जो विभिन्न वाद प्रचलित हैं जैसे— वोलशेविज्म, कम्युनिज्म इत्यादि का मूल भी पुराणों में उपलब्ध होता है। सृष्टि के आरम्भ से उत्पन्न विभिन्न जातियों के इतिहास को निरूपित करें तो समय-समय में उत्पन्न विभिन्न वर्ग और वादों का मूल, पुराणों में उपलब्ध क्यों नहीं हो सकता? आजकल वही प्राचीन वाद उत्पन्न हो रहे हैं। यह तो सृष्टि वैचित्र्य तथा अविद्वानों का साहसमात्र है। वर्समान में प्रचलित वादों के बारे में यह कहना है कि वर्ग और वादों के दोषों को दूर करके उनके गुणमात्र पुराणों में ग्रहण किए गए हैं। ऐसा द्वितीय सिद्धान्त भी अनुकूल है। जैसा कि श्रीमदभागवत् में भी स्मरण किया गया है—

षष्ट स्कन्ध में अध्याय 142 श्लोक संख्या 8—
यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्यते स स्तेनो दण्डमर्हति।।

विचार कीजिए कि इससे भी अधिक वोलशेविज्म और कम्युनिज्म में वर्णित विषय में कहा गया है क्या? इसी मूल सिद्धान्त को प्रचारित करने के लिए ये वर्गवाद प्रवृत हैं। इन आधुनिक वादों में बहुत सारे दोष नेतृत्व करने वाले लोगों द्वारा भ्रम तथा प्रमाद आदि द्वारा जनित हैं। इन दोषों की उपेक्षा करके समाज का उपकार करने वाले तत्व पुराणों में संगृहित किए गए हैं। श्रीमद्भागवत्

के प्रथमस्कन्ध के शापप्रदान काल में ऋषिपुत्रों ने कहा—

अहो प्रमादः पालानां पीवानां बलिभुजामिव।
स्वामिन्यघं यद्दासानां द्वारपानां शुनामिव।।33।।
ब्राह्मणैः क्षात्रबन्धुर्हि द्वारपालो निरूपितः।
स कथं तद्गृहे द्वाःस्थः सभाण्डं भोक्तुमर्हति।। 34।।
इत्यादि।

क्या इससे भी अधिक प्रजा का अधिकार वर्णित है? यदि पुराण नहीं होते तो रघुवंश, कुमारसंभव, शाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीय आदि सदृश काव्य नाटकों में विकुलगुरु कालिदास की सुमधुर अन्वयकृत अमृत वाणी को सुनाते-सुनाते सहृदय लोग जो लोकोत्तर आह्लाद को अनुभव करते हैं तथा जो करुणा के अमृतसागर में डुबकी लगाकर लोकान्तर आस्वादन के अनुभव में मग्न हैं वे उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ऐसा बलपूर्वक कहते हैं। भारवि और माघ नैषधादि ग्रन्थों से अनवरत लोकोत्तर आह्लाद का पान करते हैं। यह सब पुराणों की ही देन है। पुराण ही कवियों की आधारभूमि है। आजकल भी जो काव्य-नाटक, आख्यायिका आदि को लिखकर जगत में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, वे भी प्रायः पुराणों के ही किसी प्रतिबिम्ब का दर्शन कराते हैं। ऐसा प्रत्यक्ष देखा गया है।

यह जो सूर्यचन्द्रादि द्वारा प्रतिक्षण विराजित, तारों द्वारा शोभित, वितानरूपी नील नभ, समुद्ररूपी मेखला, जगत रूपी प्रागंण को दैदीप्यमान करती हुई, वायुरूपी चामर, गंगा-यमुना द्वारा शोभित, मन द्वारा भी जिसका चिन्तन नहीं किया जा सकता, ऐसा अविस्तार जगत मण्डल हम सबके सामने दृष्टिगोचर होता हुआ अनन्त कौतुक विस्मय को उत्पन्न करता है, वहां कहां से आया? किसने इसकी दिव्य मनोहारी सुषमा संपादित की है; कितने काल से यह दृष्टिगोचर हो रहा है और कितने समय तक रहेगा और इसके दर्शक हम कहां से आए, और कितने हमारे जैसे पूर्वज अतीत में हुए हैं, इत्यादि जिज्ञासा किसके चेतन को आकुल नहीं कर देती? कौन इसकी विज्ञान रूपी विधि को प्राप्त करने के लिए उत्सुक नहीं है? किसके पास विज्ञान सहित यह ज्ञान मिलेगा? ऐसा कौन सहृदय प्रतिक्षण चिंतन नहीं करता। ये सभी जिज्ञासा सबके साथ ही शरीर द्वारा लय को प्राप्त होगी। यदि पुराणों द्वारा भूतल मण्डित हो जाए। पुराण ही सर्वविध सृष्टि तत्वों को प्रतिक्षण विमल करते हैं और मन की जिज्ञासा को शान्त करते हैं। जो पुराणों का आश्रय न लेकर विज्ञान रूपी इन्द्रिय को अपनी बुद्धि से प्राप्त करते हैं वे लोग कदम-कदम पर स्खलित होते हैं तथा प्रतिदिन अपने सिद्धान्त को परिवर्तित करते रहते हैं। न ही उनकी सिद्धान्तरूपी नाव कभी सुप्रतिष्ठित स्थान को प्राप्त होती है। ऐसा विचारवानों द्वारा प्रतिपद देखा जाता है। ❑❑

पौरोहित्य–शोधार्थी
श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ
मानित विश्वविद्यालय
कटवारिया सराय, नई दिल्ली

महिला सशक्तिकरण–यथार्थ और बदलाव

❑ मंजू देवी

महिलाएं जहां पुरुषों की ज्यादतियों और अत्याचारों को अपनी नियति मानकर खून का घूंट पीकर रह जाती थीं, वहीं वे अपने पति तक के अत्याचारों तथा अपने या बेटी के साथ हुए बलात्कार तक की रिपोर्ट पुलिस में कराने की हिम्मत जुटाने लगी हैं। 'राष्ट्रीय महिला आयोग' का गठन महिलाओं के संगठित प्रयासों का ही परिणाम है। स्त्रियों पर होने वाले अन्याय, बलात्कार जैसे अमानवीय कृत्यों, दहेज की मार, छेड़छाड़ आदि से बचाव के लिए अब कई कानून बन गए हैं।

भारतीय संविधान में स्त्री को पुरुष के समकक्ष स्वतन्त्रता और समानता प्राप्त है। देश का न्याय स्त्री के पक्ष में है। स्त्रियां विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। स्त्रियों ने राजनीति में, समाज में, खेलों में सभी जगह सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। सरकार ने वर्ष 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष के रूप में मनाने का निर्णय लिया। प्रश्न है कि किसी एक वर्ष को महिलाओं के सशक्तिकरण के प्रति क्यों समर्पित किया जाए?

सशक्तिकरण है क्या? महिला सशक्तिकरण के अनेक आयाम हैं, जिन्हें समय-समय पर समझा गया और इसके लिए तरह-तरह की नीतियां और परियोजनाएं बनाई गईं। महिलाओं की अशिक्षा, स्वास्थ्य की उचित व्यवस्था का न होना, गरीबी तथा महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह आदि को उनकी कमजोर स्थिति के लिए जिम्मेदार माना गया।

महिला सशक्तिकरण का प्रश्न कई दशकों से चिन्ता का विषय रहा है। देश की आधी आबादी को पारम्परिक रूप से घर संभालने और बच्चों का पालन-पोषण करने तक सीमित रखने से देश की प्रगति का मार्ग अवरुद्ध ही हुआ है। अशिक्षा और अज्ञानता के कारण केवल भारत में नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व के अन्य देशों में भी महिलाएं भेदभाव, असमानता, दमन, शोषण आदि की शिकार रही हैं। वर्ष 2001 को "महिला सशक्तिकरण" वर्ष के रूप में मनाने का उद्देश्य भी यही रहा कि महिला मुद्दों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाए तथा ऐसे उपाय खोजे जाएं जिनसे आगामी वर्षों में महिलाएं सबल व सशक्त हों तथा उनके प्रति बरते जा रहे दोयम दर्जे के व्यवहार में कमी आए।

1991 की जनगणना के अनुसार भारत में प्रत्येक एक हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 927 है। यह केवल संयोग की बात नहीं है कि देश में महिलाओं की संख्या पुरुषों से कम है। पंजाब और हरियाणा जैसे विकसित राज्यों में तो स्त्री-पुरुष अनुपात और भी निम्न है। देश के बहुत से भागों में तो अनेकों परिवार अल्ट्रासाउन्ड परीक्षणों द्वारा अजन्मे बच्चे के लिंग की जानकारी प्राप्त करके जन्म से पहले ही बेटियों को मार तक डालते हैं।

साक्षरता और शिक्षा, सूचना, अवसर और सशक्तिकरण के प्रवेश द्वार हैं। महिलाओं और पुरुषों के बीच की साक्षरता दरों के अन्तर से समाज में महिलाओं के स्तर का पता चलता है। 1991 की जनगणना के अनुसार

भारत में महिला साक्षरता दर 39.29 प्रतिशत् थी और पुरुषों की साक्षरता दर 64.13 प्रतिशत् थी। लड़कियों को शिक्षित करने के प्रति जिस इच्छा शक्ति का अभाव दिखाई देता है, उसकी जड़ें महिलाओं के स्तर के प्रति समाज के सम्पूर्ण नजरियों में जमी हुई हैं। लड़कों को शिक्षित करना तो भविष्य के आर्थिक लाभों के लिए निवेश माना जाता है, परन्तु लड़कियों को पढ़ाना कम लाभ देने वाला समझा जाता है।

शिक्षा के बिना लड़कियों के लिए विकास के विकल्प सीमित हो जाते हैं। उनके लिए रोज़गार पाने के अवसर भी कम और सीमित हो जाते हैं। शिक्षा के बिना महिलाएं अपने अधिकारों, स्वास्थ्य देखभाल, सेवाओं आदि तक आत्मविश्वास के साथ पहुंच प्राप्त कर उनका लाभ उठाने योग्य नहीं बन पातीं।

भारतीय संस्कृति जो विविधताओं में एकता की प्रतीक है, विरोधाभासों और विडम्बनाओं से भरी संस्कृति भी है। यही वह देश है, जहां एक ओर तो नारी की पूजा की जाती है तो दूसरी ओर उसे अबला की संज्ञा दी जाती है। एक ओर नारी ममता की मूर्ति तथा सांस्कृतिक मूल्यों की संरक्षिका समझी जाती है तो दूसरी ओर वह हेय, दलित, पतित भी मानी जाती है। इन सब अन्तर्विरोधों को जानने के लिए सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारणों पर दृष्टिपात करने की आवश्यकता है।

आधुनिक समय में जबकि महिलाएं घर और बाहर दोनों जगहों पर काम कर रही हैं और उन्हें काफी अधिक समानता प्रदान की गई है, तब भी वे पूरी तरह से समानता की स्थिति में नहीं हैं। इस असमानता का मूल आधार है— पुरुषों और महिलाओं के बीच आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक अवसरों तक पहुंच प्राप्त करने में असमानता। लड़कियों के प्रति बचपन से ही भेदभाव शुरू कर दिया जाता है और एक औसत भारतीय महिला का जीवन हर क्षेत्र में वंचन और भेदभाव का रहता है, चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो, स्वास्थ्य का या फिर रोजगार का।

महिला सशक्तिकरण के सूचक वे प्रत्यक्ष परिवर्तन हैं, जो महिलाओं की स्थिति को सकारात्मक बनाते हैं, उनमें आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की वृद्धि करते हैं तथा उनके ज्ञान, शिक्षा कौशलों के स्तर में स्पष्ट रूप से वृद्धि करते हैं, महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति पूरी जागरूकता लाते हैं और वे अपने निर्णय स्वतन्त्र रूप से लेने के योग्य बन जाती हैं।

महिलाओं के अपने बारे में जो विचार बने हुए हैं, उन्हें उनको बदलना होगा। महिलाओं के आत्मसम्मान और आत्मविश्वास में वृद्धि होनी चाहिए। उन्हें अपनी ताकत और सामर्थ्य को पहचानना व समझना चाहिए। घर, परिवार और समाज की देखभाल करने वाली स्त्री के योगदान को समझा और सराहा जाना चाहिए।

आज भारतीय नारी की पारिवारिक व सामाजिक स्थिति में बहुत बदलाव आया है। रहन-सहन, पहनावा, बोलचाल, पुरुषों के साथ सम्बन्ध, अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने की क्षमता जैसे सभी मोर्चों पर आज भारतीय नारी पहले से कहीं अधिक जागरूक, सक्षम तथा आत्मविश्वास से पूर्ण दिखाई दे रही है।

महिलाएं जहां पुरुषों की ज्यादतियों और अत्याचारों को अपनी नियति मानकर खून का घूंट पीकर रह जाती थीं, वहीं वे अपने पति तक के अत्याचारों तथा अपने या बेटी के साथ हुए बलात्कार तक की रिपोर्ट पुलिस में कराने की हिम्मत जुटाने लगी हैं। 'राष्ट्रीय महिला आयोग' का गठन महिलाओं के संगठित प्रयासों का ही परिणाम है। स्त्रियों पर होने वाले अन्याय, बलात्कार जैसे अमानवीय कृत्यों, दहेज की मार, छेड़छाड़ आदि से बचाव के लिए कई कानून बन गए हैं।

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर नजर दौड़ाएं तो साफ झलकता है कि औरतों की भागीदारी न केवल बढ़ी है, बल्कि उन्हें कुछ मामलों में महत्वपूर्ण स्थान भी मिलने लगा है। बहुत से संगठनों में तो शीर्ष पदों पर भी औरतें पहुंच गई हैं।

भारतीय समाज की अधिकतर परम्पराएं, रीति-रिवाज, मान्यताएं, मूल्य तथा नियम लिंगभेद से परिचालित हैं। समाज में स्त्री-पुरुष दोनों के लिए अलग-अलग मानदंड हैं। पुरुष इच्छानुसार कार्य करने, शिक्षा प्राप्त करने, व्यवसाय चुनने, जीवनसाथी चुनने के लिए स्वतन्त्र है,

किन्तु अधिकतर स्त्रियों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है। वे अपनी इच्छानुसार आचरण नहीं कर सकतीं।

स्त्री अशिक्षा और अज्ञानता के मध्य पुरुष की मानसिकता, आर्थिक विवशता और सामाजिक विद्रूपता के कारण स्त्रियों को वह स्थान नहीं मिल सका, जिसकी वे हकदार हैं।

महिलाओं को अधिकार सम्पन्न बनाने के लिए सर्वप्रथम उन्हें विकास के बारे में जागृत करना होगा। भारत में हर जाति, धर्म, समाज और हर क्षेत्र में पुत्री के जन्म पर पुत्र के जन्म की तरह ख़ुशी नहीं मनाई जाती। इसलिए देश में महिलाओं का अनुपात घटने के बारे में लोगों को सजग करना जरूरी है।

वर्ष 1901 में देश में महिला-पुरुष अनुपात 970—1000 का था। वर्ष 2001 की जनसंख्या के प्रारम्भिक अनुपातों के अनुसार यह घटकर 933—1000 रह गया है।

लड़कियों के प्रति उपेक्षा और भेदभाव के वर्षों को एक दिन में नहीं बदला जा सकता। स्त्रियों के सशक्तिकरण के लिए जरूरी है कि पुरुष भी उनके साथ भागीदारी व सहयोग करें। कई क्षेत्रों में औरत के काम की गिनती ही नहीं है और उसके लिए उसे कोई मजदूरी नहीं मिलती। उदाहरणस्वरूप घरेलू ईंधन के लिए लकड़ी जुटाने का काम, पानी लाने का काम, रसोई पकाने और घर की साफ-सफाई का काम, बच्चों की देखभाल, बाजार से सौदा लाना इत्यादि।

इतना होने पर भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि आज स्त्री की स्थिति में बदलाव आ रहा है। ❑❑

ए-9-123, प्रहलाद घाट, वाराणसी
उत्तर प्रदेश

परिषद् की "भारतीय आधुनिक शिक्षा" एवं "प्राइमरी शिक्षक" त्रैमासिक पत्रिकाओं के ग्राहकों, पाठकों तथा लेखकों से निवेदन

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की उपर्युक्त उल्लेखित दो त्रैमासिक पत्रिकाएं शिक्षा जगत में राष्ट्रीय स्तर तथा राज्य स्तर पर हो रहे अनेक प्रयोगों, अनुसंधानों, कार्यक्रमों व गतिविधियों को पाठकों तक पहुंचाने के सुगम माध्यम हैं। इन पत्रिकाओं का प्रकाशन विशेष रूप से विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षाविदों, शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों तथा पाठ्यक्रम निर्माताओं को समर्पित है। इनके प्रत्येक संस्करण में ऐसे नवीनतम लेखों के प्रकाशन को प्राथमिकता दी जाती है जो शैक्षिक नीतियों से संबंधित हों, गुणात्मक सुधार की दिशा में उल्लेखनीय प्रयोग हों, अधिगम को सुरुचिपूर्ण तथा ग्राह्य बनाने की दिशा में निजी अनुभव अथवा शोध कार्य हों, विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों के विवरण हों, शिक्षण-प्रशिक्षण संबंधी प्रभावी सामग्री हो। शैक्षिक उपयोगिता की दृष्टि से ये पत्रिकाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं तथा परिषद् इन्हें मूल लागत से भी बहुत कम कीमत पर पाठकों को उपलब्ध कराती है।

इन पत्रिकाओं के लिए उत्कृष्ट स्तर के शिक्षाप्रद प्रभावी लेख सहर्ष स्वीकार किए जाते हैं तथा उनके प्रकाशन के उपरांत समुचित मानदेय देने की भी व्यवस्था है। लेख की विषय-वस्तु 2500 से 3000 शब्दों या अधिक टंकित रूप में होना वांछनीय है। कृपया अपने लेख निम्न पते पर भेजें :

विभागाध्यक्ष (पत्रिका प्रकोष्ठ), प्रकाशन विभाग,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली–*110 016*

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग द्वारा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110 016 के लिए प्रकाशित तथा जैन कम्प्यूटर, शकरपुर, दिल्ली द्वारा टाइपसैट होकर गीता ऑफसेट, सी-90, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया, फेस-I, नई दिल्ली 110 020 द्वारा मुद्रित।

and start looking for his coat, while he would dance round and hinder them.

'Doesn't anybody in the whole house know where my coat is? I never came across such a set in all my life—upon my word I didn't. Six of you!—and you can't find a coat that I put down not five minutes ago! Well, of all the——'

Then he'd get up, and find that he had been sitting on it, and would call out:

'Oh, you can give it up! I've found it myself now. Might just as well ask the cat to find anything as expect you people to find it.'

And, when half an hour had been spent in tying up his finger, and a new glass had been got, and the tools, and the ladder, and the chair, and the candle had been brought, he would have another go, the whole family, including the girl and the charwoman, standing around in a semi-circle, ready to help. Two people would have to hold the chair, and a third would help him up on it, and hold him there, and a fourth would hand him a nail, and a fifth would pass him up the hammer, and he would take hold of the nail, and drop it.

'There!' he would say, in an injured tone, 'now the nail's gone.'

And we would all have to go down on our knees and grovel for it, while he would stand on the chair, and grunt, and want to know if he was to be kept there all the evening.

The nail would be found at last, but by that time he would have lost the hammer.

'Where's the hammer? What did I do with the hammer? Great heavens! Seven of you, gaping round there, and you don't know what I did with the hammer!'

We would find the hammer for him, and then he would have lost sight of the mark he had made on the wall, where the nail was to go in, and each of us had to get up on the chair, beside him, and see if we could find it, and we would each discover it in a different place, and he would call us all fools, one after another, and tell us to get down. And he would take the rule and re-measure, and find that he wanted half thirty-one and three-eighths inches from the corner, and would try to do it in his head, and go mad.

And we would all try to do it in our heads, and all arrive at different results, and sneer at one another And in the general row, the original number would be forgotten, and Uncle Podger would have to measure it again

He would use a bit of string this time, and at the critical moment, when the old fool was leaning over the chair at an angle of forty-five, and trying to reach a point three inches beyond what was possible for him to reach, the string would slip, and down he would slide on to the piano, a really fine musical effect being produced by the suddenness with which his head and body struck all the notes at the same time

And Aunt Maria would say that she would not allow the children to stand round and hear such language

At last, Uncle Podger would get the spot fixed again, and put the point of the nail on it with his left hand, and take the hammer in his right hand And, with the first blow, he would smash his thumb, and drop the hammer, with a yell, on somebody's toes

Aunt Maria would mildly observe that, next time Uncle Podger was going to hammer a nail into the walls, she hoped he'd let her know in time, so that she could make arrangements to go and spend a week with her mother while it was being done

'Oh! you women, you make such a fuss over everything,' Uncle Podger would reply, picking himself up 'Why, I *like* doing a little job of this sort '

And then he would have another try, and at the second blow, the nail would go clean through the plaster, and half the hammer after it, and Uncle Podger be precipitated against the wall with force nearly sufficient to flatten his nose

Then we had to find the rule and the string again, and a new hole was made, and, about midnight, the picture would be up—very crooked and insecure, the wall for yards round looking as if it had been smoothed down with a rake, and everybody dead beat and wretched—except Uncle Podger

'There you are,' he would say, stepping heavily off the chair on to the charwoman's corns, and surveying the mess he had made with evident pride 'Why, some people would have had a man in to do a little thing like that!'

Jerome himself was an introvert type This is how he parodies his own weakness: 'I like work, it fascinates me I can sit and look at it for hours. I love to keep it by me: the idea of getting rid of it nearly breaks my heart' You can understand how impatient some people would be with him at times

Because a husband and wife are each of different types they may find it difficult at times to understand each other If, however, they are tolerant people, they will no doubt influence each other for good, for instance, the dreamy man with a practical wife often becomes less dreamy, and his wife less sure that a little thought beforehand is not worth while. Very often their differences help them to understand other people better; but in many cases the differences lead to an unhappy marriage

We should all learn to work in the way that suits us best and to realize that our methods do not always suit other people. If they are people with whom we have to work, we should help them to perfect their own method of working and not try to force them to adopt ours

THINGS TO DO

1 Write your views about this chapter

2 Think of your friends and acquaintances and write a short description of one who is like the Prodigal Son, one who is like the elder brother, one who likes to think ahead, and one who thinks as he goes along

3 Subjects for debate

(a) Should the fatted calf have been killed for the Prodigal Son?

(*b*) 'Take care of the pence and the pounds will take care of themselves.'

(*c*) 'Penny wise and pound foolish.'

4. Write some further articles for the class encyclopaedia on, e.g., a doctor, nurse, clergyman, teacher, lawyer, merchant, engineer, postman, dustman, &c. Here are the names of some more famous people: Martin Luther, John Wesley, General William Booth, Heinrich Hertz, Samuel Morse, Dr Graham Bell, William Marconi, Sir Rowland Hill, Sir Robert Peel, Sir Walter Raleigh, Joan of Arc, Grace Darling.

XI

Physical and Mental Balance

When we watch a race-horse or a greyhound, or a good boxer or football player, we realize how beautifully the mind and body can be balanced for certain purposes. Sometimes we meet people who seem to be as well adjusted to the whole of life, and we look at them with envy. They walk as if they walked on top of the world. They meet people of all kinds and feel happy and at home with them. They appear never to be worried or distressed, whatever the circumstances may be.

This impression is largely an illusion. No human being can get through life without a good deal of worry and suffering, but many people worry and suffer more than is necessary.

The problem of reducing the amount of unhappiness in the world is much more difficult than it appears. For example, have you ever heard it said

of a person, 'He is never happy unless he is miserable'? There are many people of whom this is quite a true description Doctors spend much of their time with patients who worry continually The patient has always an excuse for his worry He worries because he has no money in the bank. If later he has £1,000 in the bank he worries because he may lose it some day If he has more money than he can ever spend he worries because his sons may waste it after he dies It is the general experience of those who try to reassure the anxious men and women that in many cases no sooner is one worry removed than another grows up in its place

It was Professor Freud of Vienna who first discovered the reason for this The habitual 'worrier' is really anxious about something which happened long ago and has been forgotten—something which happened, as a rule, in infancy We are all very much affected by the influences which shaped our lives when we were very young, but we still have great control over our bodies, especially if we realize that control has usually to be exercised in subtle ways It is no use saying: 'I will *not* be nervous I *will* be happy and enjoy life in future' You cannot bully your body in that way It will tremble in spite of you or wake you up at night with anxious dreams. But you can say to yourself: 'Now this is a situation in which I might get nervous. Therefore I shall walk slowly, talk slowly, take one or two good slow breaths to steady myself, and try to realize

that I shall be dead in a few years anyway and then it won't matter.'

Army and Navy officers are very skilled in these tricks. When someone runs up in great excitement and says, 'The enemy are beginning to attack, sir,' a good officer says, perhaps, 'Well, I am going to finish this piece of bacon anyway. They won't get that.' It is very important in a war that soldiers should not get too excited or they will fight badly or perhaps even run away. That is why officers tend to make remarks of this kind. You remember that when Sir Francis Drake was told that the Spanish Fleet was in sight he insisted on finishing his game of bowls. That was just bluff: he wanted to steady his men and steady himself.

One of the ways of training ourselves to keep happy is to learn to walk properly. If you watch people walking you will see that some hurry along with anxious steps, some slouch along with their heads down, while others have a natural easy swing which helps to induce serenity. The right way to walk is from the hips, with a fairly straight leg. Most people walk from the knee and make no use of the hip turn. By so doing they lose the spring of the body and jar it slightly at every step. Think of the body as made up of two halves, a top half and a bottom half, divided at the waist. When the bottom half turns one way the top half should turn the other way. This double movement of the trunk makes the arms and legs swing like pendulums, and then
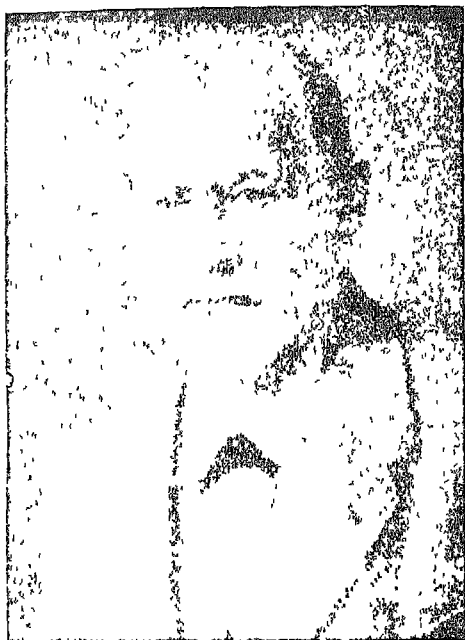
Professor Sigmund Freud, the great scientist who explained how the mind works

walking is easy and pleasant and helps to restore bodily balance

A famous old Greek called Epictetus has given us some valuable advice about how to live happily. When he lived the only ships were small sailing-ships and they were not very safe on a rough sea. Epictetus said 'Don't worry about the great waves which might drown you Realize that it would only take two pints of the water to drown you, and that

all the rest does not really matter. You have to die some time anyway. Choose your captain with care, choose with care the day you go, and having done that stop worrying about it.' Epictetus says elsewhere in his book that when a man looks at his child he should say to himself. 'Today he is here and well. Tomorrow he may be gone.' Boys and girls should think of this with regard to their parents and others, and it will prevent them from making trouble so often about details which really do not matter. Many of the soldiers who came home from the last Great War found there was so much to be thankful for in everyday life that they laughed when they remembered the trifling things about which they had once grumbled.

People who are continually unhappy or worried are not good citizens. They make life unpleasant for other people. If you always remind yourself that everyone has a great deal to suffer in life and that most of the people round you are keeping their trouble to themselves, you will not inflict your worries on them unless you really need help and they can help you.

Probably the most important general principle in obtaining physical and mental balance is the need for adjustment between the stimulus and response. If you see a bull coming after you and you get a fright and run away to safety, the mental and physical processes are balanced. The feeling of fright was the body getting ready to run, and after a good

run you feel better Let us take a little time here to consider in detail what really happened.

When you saw the bull certain bodily changes took place You felt your skin go 'all goosey'. What do you think that was? It was the little hairs on your body all standing on end When we were hairy savages the hair on our bodies would have stood out as a cat's does when it gets a fright, and made us look very much bigger and more terrifying. We often say when we get a fright, 'It made my hair stand on end,' and in most animals the hair, stands out in this way either from fright or anger. The porcupine's quills have developed from hair and when its hair stands on end it is very difficult to touch it without getting hurt. Unfortunately that trick does not help us much nowadays. The other changes, however, are more important

Our mouths become dry when we are frightened or angry That is because the glands which make the saliva have stopped working Not only have these glands stopped, but all the glands that make digestive juices have stopped too There is no gastric juice being made in the stomach The reason for this is that the body has said, as it were, 'Stop sending any blood to the digestion just now That can wait We need all the blood we can get for the big muscles of the legs and arms. There is a war on' Now this extra blood in the legs and arms helps us to run quicker or to fight better When a bull is after a man he can beat his own record for the 100

yards or the high jump You will notice also that when you are frightened or angry your heart beats more quickly and you breathe more quickly That is because your body has said to these parts, 'Come on now, heart and lungs Speed up to your full rate and help us all you can in this dangerous situation '

The body sends these messages through the blood-stream Immediately you are frightened or angry two little glands above the kidneys discharge a substance called adrenalin into the blood-stream, and the changes we have described and many other changes take place in a few seconds Even the blood changes so that it dries up more quickly round a wound

Now a great many of the troubles from which people suffer are caused by these changes taking place too often, or lasting too long It does not matter if your digestion stops working while you are running away from an angry bull, but it does matter if your digestion stops working, or works badly for three months, while you worry about an examination, or because your mother is ill, or for any other reason You must learn to live as good soldiers live and only worry when worry really helps you to do something in life better, and you must learn to relax and let the body work harmoniously again as soon as you can

There are people who do not worry as much as they ought they allow other people to worry for them There are husbands, for example, who do

not care whether there is food for the family or not; then the wives get more than their share of worry. There are wives who do not care whether they are in debt or not, and then the husbands get more than their share of worry.

It is very difficult for anyone to live as he knows he ought to live, but if you understand something of the need for balance in the body and try to avoid overstraining these balance mechanisms, you will have a much better life yourself and will be a much better citizen in every way.

THINGS TO DO

1 Write your views about this chapter.

2 Describe some difficulty you have in life, and explain what you are doing to try to get over it.

3 See if you are walking properly (as the left foot goes forward the right shoulder should go forward, toes pointed straight in front—not turned outwards).

4 Subjects for debate:

(a) 'More people die of worry than from infectious diseases.'

(b) 'The more haste the less speed.'

5 Here are some more famous people to write about for your class encyclopaedia: Boadicea, Garibaldi, Shakespeare, Milton, Rembrandt, Rubens, William Morris, John Ruskin.

XII

Bringing up Babies

ONE of the most important discoveries of the present century is that most of the bullies, the sulky people, the criminals, and even many of the people in

asylums might have been good, useful and happy citizens if they had been properly brought up as children Thousands of us who think we were well brought up were not well brought up, and thousands of parents who think they have done everything possible for their children have really damaged them seriously

A large number of adults are what we call 'neurotic' They are too emotional They get very worried or very angry over details, or they are so afraid of cats, or spiders, or traffic, or disease or something else that they cannot carry on effectively with their work in life When expert doctors try to cure such cases they almost always find that the man who is a bully now was a bully at school, and the woman who is sulky now was sulky at school The trouble, whatever it was, had usually started early in life If a father bullies his young son, one of two things may happen If the son is a strong-minded boy he resents this bullying and will try to get revenge for it in some way. He may break other people's windows, for example, or bully other children These expert mental doctors say that 'many a boy gets a thrashing that was really intended for his grand-father' Think this out and you will understand it.

All boys, however, are not naturally of this tough type There are many boys who by nature are kindly, quiet, and anxious to please When they are very young they want to live happily with their

parents, and if they have to give in about everything they give in, and so there is no fight. But when they get older they find they have to make decisions for themselves, and they do not like to make decisions. You will find that often such boys will say then, 'We want a leader! Why cannot we have someone in this country who will tell us all what to do and see that we do it?' And yet if they get a leader they are not happy either, for no one can grow up properly who does not grow up in his own way.

It may be convenient to train your baby to sit still and do nothing, with certain babies that can easily be done. But you will not be so pleased when your baby is sixteen and still wants to sit and do nothing, and that is what he will tend to do. It may be too late then to train him to live in any other way.

Babies are easily frightened and easily made angry, and these early emotional disturbances may, if excessive, cause the baby to stammer or have a squint when he grows up. It is a good working rule never to quarrel with an angry or frightened baby. Give in to it. You have to train babies, but that is not the time to do it. Rather let your training slip back a bit than risk permanent injury.

Mothers try to train babies to go to sleep when put in their cots at night after a bath. Sometimes the baby cries because he is left. Some mothers say, 'Oh, let him cry. He will soon learn that that is no use.' Well, he often does learn, but if he cries very much he may rupture himself. Even if he gets tired

of crying because it is no use, the lesson he has learnt is not necessarily a good one. You can train a baby that it is no use crying for his food—he will get it when his mother gives it to him, it is no use crying to be taken up—he will be taken up when his mother is ready to take him up, and so on. But when the baby was hungry, cried for food, and did not get it, he had lost his first fight. When he cried to be taken up and was not taken up, he had lost his second fight, and so he goes on always losing his fight until he does not want to fight any more. This is very comforting for the mother, because the baby is then much less trouble, but this mother will not be so happy when her son, having learnt his lesson well, is standing at the street corner all day waiting till someone brings him a job.

All this is extremely difficult when you try to apply it to real babies, and you can only bear in mind the general rule: 'As the twig is bent the tree is inclined.' Your boy will not be a leader of men if you never allow him to lead as a child. It is no use saying that 'before you can learn to command you must learn to obey.' It may be true that no one can command well who cannot obey well, but if a child has not had some experience of leadership before he is five it is usually too late to begin to learn.

Have you noticed how kindly and friendly certain dogs are compared with others? Some breeds are difficult to train, of course, but as a rule the friendly dogs are those which have always been treated in a

friendly way It is the same with human beings The kindly people, who are not always trying to snatch more than their share of the good things of life, have usually serene natures The fierce angers which might have developed were not aroused much in the early days, and now there is no place for them. It is not these people who make wars or cause unhappiness in the community They are the meek who will inherit the earth. The roaring bullies do not matter much in the scheme of things. They are just little eruptions on the body of humanity. The great work of human progress is done by quiet people. It is because there are so many noisy, greedy, and selfish people in the world that progress is so slow

When you have the care of young children see to it that you give them a quiet, happy, and interesting upbringing, and when they grow up they will become citizens of whom you can be proud.

THINGS TO DO

1 Write your views about this chapter

2 Describe from your own experience incidents in which a mother or father handled a child (*a*) cleverly (*b*) stupidly

3 Subjects for debates

(*a*) 'Spare the rod and spoil the child '

(*b*) 'Punish in anger or not at all '

(*c*) If a young child is excited and quarrelling with his mother, who should give in ?

4 Add to your class encyclopaedia as new subjects occur to you Write 'revised editions' of all articles which are not now good enough

XIII

Conclusion

In this book you have been introduced to many problems, and sometimes left without an answer to them You have been given much advice, often contradictory advice there should be freedom, there should be discipline, young children should be allowed to do as they like, young children should be trained to take their place in the community; you should be generous with money, you should be careful with money, and so on.

Life is made up of these contradictions If you think of all the proverbs you have heard or read you will find that many of them can be arranged in two columns, one saying do this, and another saying don't do this 'Take care of the pence, and the pounds will take care of themselves' 'Don't spoil the ship for a ha'pennyworth of tar' 'Never put off till tomorrow what you can do today' 'Never do today what can wait till tomorrow' And so on

Yet all this apparently contradictory advice is quite sound advice on certain occasions It is true, and important to know, that if we take care of the pence the pounds will take care of themselves; but in taking care of the pence we must not be so economical that more important things are forgotten or neglected We must not put off till tomorrow things which can be done today equally well, and possibly

Many good citizens work in a humble way

with advantage, yet a wise man, who has clearly in his mind the dangers of delay, often postpones taking action until tomorrow in the hope that by then circumstances will be more favourable for action

Jesus was always preaching tolerance.

Ye have heard that it hath been said, Thou shalt love thy neighbour, and hate thine enemy But I say unto you, Love your enemies, bless them that curse you, do good to them that hate you, and pray for them which despitefully use you

It was very seldom that Jesus departed in practice from these guiding principles but here was one exceptional case:

> And Jesus went into the temple of God, and cast out all them that sold and bought in the temple, and overthrew the tables of the moneychangers, and the seats of them that sold doves, and said unto them, It is written, My house shall be called the house of prayer, but ye have made it a den of thieves

No good citizen can adopt the 'peace at any price' policy. There comes a time when a man of principle should be prepared to make a stand, and, if necessary, fight. The problem is to know when to make a stand Often when we think we are fighting for a principle we are only fighting for the same selfish reasons as the animals fight We should always be suspicious, for example, of our own 'righteous indignation' It is usually very similar to the bristling hair of the angry wolf. It has its roots in the animal in us

Try to develop a sense of proportion. When you see someone who has done wrong, or who is stupid, or selfish, or bad-mannered, say to yourself: 'There but for the grace of God go I.' That is literally the truth When you feel you have won your way to success, and everything is going well with you, dig in quietly, like the soldiers, and wait for the counter-attack. You will get it all right before very long

> He hath put down the mighty from their seats,
> And hath exalted them of low degree

Don't worry if you are not in the limelight. In the limelight there are more bad citizens than good ones There is no better citizen than the woman who brings up a family of happy, healthy children, and most of the women who do this are never known beyond their own friends. 'The happiest women are those who have no history,' and many of the men who have made the best contributions to civilization have never been heard of.

> Fret not thyself because of evil-doers
> Neither be thou envious at the wicked·
> For there will be no reward to the evil man
> The lamp of the wicked shall be put out.

ACKNOWLEDGEMENTS

THANKS are due to Mr H J Palmer for his help in obtaining many of the illustrations in this book, to the Exclusive News Agency for supplying prints of the Statue of Moses by Michelangelo, Pre-historic man—Migration of the tribe, &c, to M Girondin for the photograph of the portrait of Pasteur, to the *Yorkshire Post* for the photograph of Flats at Quarry Hill, Leeds, to the New York Times Co, Ltd, for that of the County Hall, London, and to World Wide Photographs, Fox Photographs, and the Rischgitz Art Studio for permission to use other copyright photographs

NBB